॥ ओ३म् ॥

भाषा फक्किका प्रकाश

सन्धि प्रकरणान्त

प्रथम खण्ड

अनुवादकः—

पं० प्रभाकर शास्त्री,

लेखक तथा प्रकाशकः—

भूमानन्द ब्रह्मचारी,

भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा,

रेवाड़ी।

प्रथम वार १०००

सन् १९२५

मूल्य आठ आना

धन्यवाद

श्रीमान् सेठ भक्त नन्दकिशोरजी को अतिशय धन्यवाद है कि उन्होंने इस पुस्तक के छपवाने में आर्थिक सहायता प्रदान की है।

विनीतः——

भूमानन्द ब्रह्मचारी,

भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा

रेवाड़ी।

प्रस्तावना

श्री पाणिनीय व्याकरण सम्पूर्ण व्याकरणों का शिरोमणि है। इसकी प्रशंसा देश देशान्तरों के विद्वान् अपने मुक्त कण्ठ से कर रहे हैं। इस को बहुत कठिन समझ कर हमने श्री १०८ श्री परम पूज्य श्री गुरुदेव की आज्ञा से सिद्धान्त कौमुदी की गूढ फक्किकायें मूलार्थ सहित सरल हिन्दी भाषामें विस्तार पूर्वक भाष्यादि ग्रन्थों से संग्रह की हैं। यह इतनी सरलता पूर्वक लिखी है कि गुरु की सहायता विना ही विद्यार्थी लघु कौमुदी पढ़कर स्वयं ही सिद्धान्त कौमुदी पढ़ पढ़ा सकता है। अधिक क्या कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो हमने लिखने में छोड़ा हो। अतः हम आशा करते हैं कि विद्यार्थी गण इसको उपयोगी समझ कर लाभ उठायेंगे और शीघ्र ही हमको आगे के प्रकरण प्रकाशित करने में प्रोत्साहित करेंगे। विद्यार्थियों के सुभीते के लिये हमने इसका मूल्य भी बहुत ही कम रक्खा है। साथ में विद्वानों से प्रार्थना है कि इसमें जो त्रुटियां रह गई हैं कृपया हमें सूचित करदें जिससे दूसरे संस्करण में शुद्ध करके इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बनाया जा सके। साथ में हम श्रीमान पण्डित प्रभाकर शास्त्री जी अध्यापक भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा को भी अतिशय धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने महान परिश्रम करके इस पुस्तक को लिखकर श्री भगवद्भक्ति आश्रम को समर्पित किया है और अग्रिम प्रकरणों के लिखने का वचन दिया है।

विनीतः—

भूमानन्द ब्रह्मचारी,

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा, रेवाड़ी।

---

* ओ३म *

॥ सिद्धान्त कौमुदी-फक्किका ॥

श्रीगणेशं नमस्कृत्य भारतीं च शिवं तथा ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते फक्किका मया ॥१॥

विद्यार्थी—श्रीगुरुजी महाराज, ग्रन्थ के आदि में मङ्गल क्यों किया जाता है।

गुरुजी—बेटे ग्रन्थ के बनाने में कोई विघ्न उपस्थित न हो और ग्रन्थ कर्ता को नास्तिक न समझें और ग्रन्थ कर्ता के मङ्गल को देख कर शिष्य लोग भी मङ्गल करें इसवास्ते ग्रन्थ कर्ता मङ्गल करता है—'मुनित्रयं नमस्कृत्य' इति।

मन्तारो मुनयः (ज्ञातार इत्यर्थः) सकलशास्त्रार्थतत्त्वावगन्तारः—सम्पूर्ण शास्त्र के तत्त्व को जाननेवाले। नमस्करणं नमस्कृत्य—नमस्कार करके। तस्योक्तयस्तदुक्तयः, तास्तदुक्तीः अथवा तेषामुक्तयस्तदुक्तयस्तास्तदुक्तीः—मुनित्रय की उक्ति को परिभाव्य—विचारकर। अथवा प्राचीनों की उक्तिका अनादर करके। इयम् (मद्बुद्धिविषया) यह मेरी बुद्धि में स्थित। व्याकरणं अधीयते विदन्ति वा इति वैयाकरणाः—व्याकरण के पढ़नेवाले, अथवा जाननेवाले। असेधि इति सिद्धः (निश्चयः) अन्तति इति अन्तः (निश्चयः) सिद्धो अन्तो येषां ते सिद्धान्ताः (वादिप्रतिवादिभ्यां निर्णीतार्थाः सिद्धान्ताः) वैयाकरणानां सिद्धान्ताः वैयाकरणसिद्धान्ताः। कौ पृथिव्यां मोदते मोदयति इति कुमुदः (चन्द्रः) कुमुदस्येयं कौमुदी—वैयाकरणसिद्धा-

नानां कौमुदी इव इति ताम्—वैयाकरणों के सिद्धान्त को चन्द्रमा की चान्दनी के समान प्रकाश करनेवाली।

अथा इयंवैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी विरच्यते। किं कृत्वा (मुनित्रयं नमस्कृत्य) पुनः किं कृत्वा तदुक्तीः परिभाव्य। अर्थ—मैं भट्टोजिदीक्षित बुद्धि में स्थित इस 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' को बनाता हूं अर्थात् पठन पाठन पुस्तक सम्पादन द्वारा प्रकाशित करता हूं। क्या करके मुनित्रय को नमस्कार करके, फिर क्या करके मुनित्रय की उक्ति को विचार कर और प्राचीनों की उक्तिका अनादर करके।

वि०—मुनित्रयं नमस्कृत्य—इतना बड़ा श्लोक क्यों बनाया।

गु०—[१] मुनित्रयं नमस्कृत्य इस पद से मङ्गल किया है।

[२] तदुक्तीःपरिभाव्यच्च—इस से अपने ग्रन्थ को प्रामाणिकता सिद्ध की। क्योंकि मुनियों की उक्ति को लेकर बनाने से ग्रंथ प्रमाणिक होगया नहीं तो स्वकपोलकल्पित को कौन मानता।

[३] और प्राचीनों की उक्ति का अनादर किया है। क्यों कि उनके ग्रन्थ बहुत कठिन थे और अशुद्ध भी थे।

[४] श्लोक के उत्तरार्द्ध भाग से 'अनुबन्धचतुष्टय' दिख लाया है।

वि०—'अनुबन्धचतुष्टय' क्या होता है?

गु०—प्रवृत्ति प्रयोजकज्ञातजनकज्ञानविषयत्वम्-'अनुबन्धचतुष्टयत्वम्' वस्तु में प्रवर्त कराने वाले ज्ञान का विषय 'अनुबन्धचतुष्टय' कहलाता है प्रवृत्ति प्रयोजक ज्ञानत्वञ्च कृतिसाध्यत्वेसति इष्ट साधकत्वम्-जैसे लङ्का में सोना यह इष्ट साधन है परन्तु कृति साध्य नहीं क्योंकि हम वहां जा नहीं सकते हैं इस वास्ते उस में प्रवृत्ति नहीं

होती है और विष भक्षण यह 'कृतिसाध्य' है, परन्तु 'इष्ट-साधन' नहीं है क्योंकि विष खाने से मर जाता है इस वास्ते प्रवृत्ति नहीं होती है। इसी वास्ते इस ग्रंथ के पठन में प्रवृत्ति तभी होसकती है, जब 'कृतिसाध्य' और 'इष्टसाधन' हों। यह बात 'अनुबन्धचतुष्टय' के विना नहीं जान सकते हैं। इसवास्ते 'अनुबन्ध चतुष्टय' दिखलाया। वैयाकरणसिद्धान्तविषयाः ।तज्ज्ञानम् (प्रयोजनम्) तदभिलाषुरधिकारी। प्रतिपाद्य—प्रतिपादक भाव सम्बन्धः-ग्रंथप्रतिपादक पदार्थ प्रतिपाद्य।

॥ विशेष शङ्का ॥

वि०—मुनित्रयं नमस्कृत्य—यहाँ नम शब्द के योग में 'नमः स्वस्ति०' इस सूत्र से चतुर्थी होनी चाहिये।

गु०—यहां चतुर्थी नहीं हो सकती है क्योंकि 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति बलवती होती है "नमःस्वस्तिस्वाहा०' यह पद का नाम लेकर चतुर्थी करता है। "कर्तुरीप्सित" यह क्रिया का नाम लेकर द्वितीया करता है इस से द्वितीया बलवती है इसवास्ते द्वितीया हुई है। अथवा 'नमः स्वति०' इस में नम अर्थवान् है। नमस्कृत्य में अनर्थक है। अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता है। इस लिये चतुर्थी नहीं हुई।

वि०—परिभाव्य के दो अर्थ कैसे हुये। क्योंकि एक वार उच्चारण किया हुआ शब्द एक ही अर्थ को कहता है एक बात। दूसरी बात यह कि भू धातु के दो अर्थ कैसे हो गये हैं।

गु०—बेटे यहां परिभाव्य शब्द की आवृत्ति कर लेना इस

लिये दो अर्थ हो गये हैं। और धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं, परि पूर्वक भू धातु का विचार और अनादर दोनों अर्थ हैं। इस वास्ते 'परौभुवोऽवज्ञाने' इस सूत्र में अवज्ञान ग्रहण सार्थक होता है। क्योंकि अवज्ञान अर्थ तो तुम मानते ही नहीं, फिर अवज्ञान अर्थ में आचार्य्य घञ् कैसे करते हैं इसी से जानते हैं कि धातुवों के अनेक अर्थ हैं। इस लिये कोशकार भी 'परिभवः-परीभावः' यह अनादर के पर्य्याय शब्द देता है।

वि०—गुरुजी 'मुनीनां त्रयम्' मुनित्रयम यह षष्ठी समास कैसे हुआ क्योंकि त्रि शब्द संख्या का वाचक है और 'संख्या' रूपरस० इत्यादि २४ गुणों में आजाती है। तो पूरण गुण० इस समास के सूत्र से निषेध होने से षष्ठी समास न होना चाहिये।

गु०—बेटे यहां त्रि शब्द गुण वाचक नहीं है। क्योंकि तयप् प्रत्यय लगा देने से 'समुदाय' का वाचक हो गया। (अर्थात् द्रव्य का वाचक) 'त्रयोऽवयवा यस्य' इस व्युत्पत्ति से ग्रंथ कर्ता लिये गये।

वि०—कौमुदी शब्द की सादृश्यता ग्रंथ के साथ कैसी हुई।

गु०—बेटे चन्द्रमा का प्रकाश सज्जनों को आनन्द देता है और चोरों को दुख देता है। इसी प्रकार यह ग्रंथ भी उत्तम बुद्धियों को आनन्द देता है और मन्द मतियों को दुख देता है इस वास्ते सादृश्यता हो गई।

वि०—इदम् शब्द समीप में कोशकारों ने वर्णन किया है कौमुदी अभी बनी ही नहीं है फिर इयम् पद क्यों दिया है।

गु०—बेटे इयं का अर्थ मद्बुद्धि विषया है। पहिले बुद्धि में बनाकर फिर प्रकाशित किया है इस वास्ते 'इयम' पद है।१।

प्रत्याहार संज्ञा सूत्रों को लिखते हैं—अइउण्०

वि०—महाराजजी इन सूत्रों में सन्धि क्यों नहीं होती है।

गु०—बेटे सन्धि की अविवक्षा कर दी है नहीं तो वर्णज्ञान नहीं होता मेल होने से खिचड़ी होजाती इस वास्ते सन्धि नहीं की है।

वि०-अच्छा गुरुजी इनों में विभक्ति कहां गई, और जो विभक्ति रहित होते हैं वे अपद होते हैं 'अपदं न प्रयुञ्जीत' अपद का प्रयोग नहीं होता है, इनों का प्रयोग नहीं होना चाहिये।

गु०—प्यारे बेटे, यह अनुकरण है, और अनुकरण दो प्रकार के होते हैं, एक भेदानुकरण, दूसरा अभेदानुकरण। 'कार्य्यानुकरणयोर्भेदविवक्षा अभेदविवक्षाच'। कार्य्य और अनुकरण की भेद विवक्षा होती है और अभेद विवक्षा होती है। अभेद विवक्षा पक्ष में अनुकरण अर्थवान् होने से विभक्ति आती है उसका सौत्रत्वात् सुपांसु० करके लोप कर देना, अभेद विवक्षा पक्ष में विभक्ति आती नहीं है और प्रयोग शास्त्र में प्रसिद्ध है, इस वास्ते यह 'का इस प्रकार वारण करना।

वि०—गुरुजी, हयवरट्० और हल्, यह दो 'ह' वर्ण क्यों किये हैं, सम्पूर्ण तो एक ही वार पढ़े हैं।

गु०—बेटे, द्वितीय हकार शलों में आने के वास्ते है, दुह् धातु में ह् शलों में आने से शलइगुप० इस से क्ति को क्त होगया। प्रथम हकार अटों में आने के वास्ते है, अर्हण में अट् कु० इस से अट् के व्यवधान में न का ण होगया।

वि०—अच्छा लण् में और अइउण् में दो ण क्यों है।

गु०—लण का णकार व्यर्थ होकर व्याख्यान तो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्। इस परिभाषा को ज्ञापन करता है॥

'एषां वेदबोधनार्थमाह' इन चौदह सूत्रों को वेद बतलाने के वास्ते कहते हैं, 'इतिमाहेश्वराणि सूत्राणि' यह महेश्वर से आए हुए सूत्र अणादि संज्ञा के वास्ते हैं।

वि०—गुरुजी इस में क्या प्रमाण है कि यह सूत्र महेश्वर से आये हैं और वेद है वेद तो अनादि है, यह सूत्र महादेव जी ने बनाये होंगे, अथवा पाणिनीजी ने ही बनाये होंगे, जो बनाए जाते हैं वे आदि नहीं हो सकते हैं।

गु०—बेटे. सनकादि-ऋषि और पाणिनी जी तप करनेको गये थे, वहां महादेवजीने प्रसन्न होकर अपना डमरू बजाय, उसमें से यह सूत्र पैदा हुए, परन्तु अनुबन्ध महादेवजी ने लगा दिये, और सूत्र अनादि है, इसी वास्ते भाष्यकारने लिखा है, कि 'अनुबन्धकरणार्थश्च वर्णानामुपदेशः' अर्थात् पाणिनी भी इन सूत्रों को जानते थे परन्तु अनुबन्ध नहीं लगा जानते थे, इस लिये अनुबन्ध लगाकर उपदेश किया। उपदेश बने हुए मंत्र का होता है बना कर नहीं किया जाता है इसी वास्ते 'वृद्धिरादैच्' सूत्र में प्राचीनोंने शंका किया है कि वृद्धि विधेय है, आदैच् उद्देश्य है तो 'उद्देशस्य पूर्व वचनम्–विधेयस्य ततः परमिति' उद्देश्य पूर्व होता है और विधेय बाद में होता है। यहां विपरीत कैसे किया, इसपर भाष्यकारने कहा है कि 'मंगलार्थं वृद्धिशब्द आदौप्रयुक्ते, इससे मालूम होताहै कि मंगलार्थ वृद्धि शब्द आदि में किया है इसवास्ते वृद्धिरादैच् से अष्टाध्यायी का आरम्भ है, और महादेवजी ने भी नहीं बनाये क्योंकि पूर्वोक्त भाष्य कथन असंगत होता है, इसी वास्ते बोपदेव ने कहा है, "नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पंच वारम्। उद्धर्तु कामः सनकादिसिद्धान्नेतद्विमर्शे शिवसूत्र जालम्॥ नृत्य के अन्त में महादेवजी ने नौ पाँच १४ वार डमरू बजाया

उससे यह सूत्र निकले और सनकादिकों की मुक्ति हुई और पाणिनी का शास्त्र बना। इस वास्ते माहेश्वराणि में आगत अर्थ में अण् प्रत्यय करना प्रोक्त अर्थ में नहीं करना। महेश्वरात्-आगतानि माहेश्वराणि नतुमहेश्वरेण प्रोक्तानि एवं च महेश्वरवरप्रसादात् पाणिनिना मंत्रवल्लब्धानि- किमर्थ-मत्रलेखनमेषाम्- कुतो वेदत्वात् वेदे-एवलेखनमुचितम्-इत्याह-अणादिसं० अण् आदियीसांताः अणादयः-अणादयश्चताः संज्ञाश्च-अणादि संज्ञाः-ता एवार्थ प्रयोजनं येषां तानि-अणादि सं०।२।

कथंच-अणादि संज्ञा इत्याशयेनाह वे अणादि संज्ञा कैसे बनती हैं इस वास्ते कहते हैं- एषाम० एषां पूर्वोक्त सूत्राणा-मन्ते भवा येवर्णास्ते हलन्त्यं इतिवक्ष्यमाणेन इत्संज्ञकाबोध्याः। इनो के अन्त्यवर्णइत्संज्ञक है, या या संज्ञा सा सा फलवती इतिनियमात् इत्संज्ञायाः फलं अणादि संज्ञाएवेति ॥३॥

कहीं २ मध्यम इत्संज्ञक के साथ भी प्रत्याहार बनते हैं इस वास्ते कहते हैं- लण् सूत्रे० लंण सूत्र में अकार इत्संज्ञक है। उरण् र पर इत्यादि सूत्रों में र प्रत्याहार बनाने के वास्ते ॥

वि०—गुरुजी 'लंण्' में अकार अनुनासिक है और उसके साथ प्रत्याहार बनते हैं इस में क्या प्रमाण है।

गु०—वेदे तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् इस सूत्र के भाष्य में लपरश्चेति वक्ष्यामि लिखा है उस का उरण् 'र' पर में पुनः लेख नहीं पाया जाने से [illegible] ने लपरश्चेति व्याख्यानं कर्तव्यम् यह आशय प्रकट किया है दीक्षित कैयट का अनुयायी है इस वास्ते लंण् के लँ में अ को अनुनासिक मानकर 'र' प्रत्याहार बनाने में लाघव समझकर 'र' प्रत्याहार बनाये हैं।

वि०—गुरुजी फिर तो हम इ को यणचि में भी य प्रत्याहार मान लेंगे ण् ग्रहण नहीं करेंगे।

गु०—बेटे य प्रत्याहार मानने में ङे-र्यः- इस सूत्र में भी लिये जाते इस वास्ते इकोयण० का ण् ग्रहण व्यर्थहोकर ज्ञापन करता है कि-य-प्रत्याहार नहीं है।

वि०—अच्छा र प्रत्याहार मानने में दोष आता है प्रफुल्तः यहांपर- 'रदाभ्यां निष्ठातान०' इसमें र से ल का भी ग्रहण करके क्त के त का ल होना चाहिये।

गु०—अतोल्रान्तस्य में पृथक् लकारोच्चारणसामर्थ्य से र प्रत्याहार अनित्य है इस वास्ते प्रफुल्त में दोष नहीं है। वास्तविक में इतनी कल्पना करनेकी अपेक्षा-रच्लच-रौ-रौ-परौ यस्मात् एक शेष करलो- 'र' और 'ल' दोनों का ग्रहण हो जायगा यही भाष्य का भी आशय है॥

ननु हयवरट् इत्यादि सूत्रेषु पुनः पुनः अकारोच्चारणेन तस्यहलत्वप्रसङ्गः स्यात् तथाच रामः इत्यत्रसोर्लोपः स्यात् इत्याशयेनाह-हकारा० हयवरट् इत्यादि सूत्रों में बार २ अकार पढ़ने से अकार भी हल् प्रत्याहारों में आजायगा तब रामस्, यहां पर सु लोप होजायगा इस वास्ते कहते हैं- हकारादि० हकारादिकों में अकार उच्चारण के वास्ते है। अर्थात् स्पष्ट उच्चार के वास्ते हैं।

वि०—गुरुजी यदि उच्चार के वास्ते है तो क्यों लगादिया

गु०—बेटे व्यंजन का ठीक ठीक उच्चारण स्वर के विना नहीं होता है इसी वास्ते भाष्यमें लिखाहै कि 'नचुनरन्तरेणाचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि सम्भवति' अच के विना व्यंजन का उच्चारण भी नहीं होताहै। और आचार्य्य की यह शैली है कि- यत्तुल्यजातीयांस्तत्तुल्यजातीयेषूपदिशति अचोऽच्सु हलो हल्षु, इति। अचों को अचों में लिखते हैं, और हलों को हलों में ॥४॥

इस वास्ते हल् घटक अच् हलों में नहीं लिये जाते हैं"कहीं २ मध्य इत्संज्ञक के साथ भी प्रत्याहार बनते हैं। इस वास्ते कहते हैं लण् सूत्रे० लण् सूत्र में अकार इत्संज्ञक है। उरण् रपरः इत्यादि सूत्रों में र प्रत्याहार बनाने के वास्ते।

वि०—गुरु जी र में अकार अनुनासिक है और उसके साथ प्रत्याहार बनते हैं इसमें क्या प्रमाण है।

गु०—तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् इस सूत्रमें लपरश्चेति वक्ष्यामि यह लिखा है उसका उरण्रपर में पुनः लेख नहीं पाया जानेसे कैयट ने लपरश्चेति व्याख्यानं कर्त्तव्यम् यह आशय प्रकट किया है दीक्षित कैयट का अनुयायी है इस वास्ते लण् के ल में अ को अनुनासिक मान कर र प्रत्याहार बनाने में लाघव समझ कर र प्रत्याहार बनाया है।

वि०—गुरु जी फिर तो हम इको यणचि में य प्रत्याहार मान लेंगे और ण ग्रहण नहीं करेंगे।

गु०—बेटे य प्रत्याहार मानने में डेर्यः इस सूत्र में भी लियाजाता है इस वास्ते इको यण०का ण् ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि य प्रत्याहार नहीं है।

वि०—गुरु जी यों तो र प्रत्याहार मानने में भी दोष आता है प्रफुल्लतः यहां पर "रहाभ्यां निष्ठातोन०,. इसमें र से लकार का ग्रहण करके। क्त के त का ल होना चाहिये।

गु०—अतोल्रान्तस्य में पृथक् लकारोच्चारण सामर्थ्य से र प्रत्याहार अनित्य है। इस वास्ते प्रफुल्लतः में दोष नहीं है। वास्तविक में इतनी कल्पना करने की अपेक्षाउरण रपरःमें र्च ल्च रौ

रौ परौ यस्मात् यह एक शेष करलो और फिर पर के साथ समास और ऋ लृ की सवर्ण संज्ञा होने से ऋ से लृ भी लियाजायगा और 'रपर, से-र-ल यह दोनों लिये जायंगे तो कार्य चल जायगा यही भाष्य का भी आशय है;

प्रथम। हलन्त्यम्! हलोऽन्त्यम्-इति षष्ठी तत्पुरुषः। हल् का अन्त्य इत्संज्ञक हो। हल् का अन्त्य हल् सूत्र में रहता है। इस वास्ते फलित हुआ हलिति सूत्रे० हल् सूत्र में अन्त्य इत्संज्ञक हो॥ आदि र॥ यस्मात् परोनास्ति सोऽन्त्यः। यस्मात् पूर्वो नास्ति स आदिः। आदि का अर्थ आद्याऽवयव है अन्त्य का अन्तावयव है। आदि अन्त से मध्य समुदाय का आक्षेप हो गया। इस वास्ते यह अर्थ हुआ। अन्त्य इत् सहित आदि मध्य घटित समुदाय का बोधक हो।

वि०—इस अर्थ में तो आदि अन्त का भी प्रत्याहारों में ग्रहण होना चाहिये।

गु०—बेटे संज्ञा संज्ञिनं बोधयित्वा स्वयं निवर्तते इस भाष्य न्याय से आदि अन्त का बोध नहीं होगा। इस वास्ते कहते है 'स्वस्य च०' आदि का भी बोधक होता है। और अन्त्य का नहीं होता है।

वि०—गुरू जी अष्टाध्यायी में तो एक हलन्त्यम् सूत्र है यहां दो सूत्र कहां से आगये।

गु०—बेटे एक हलन्त्यम् सूत्र के होने से अन्योन्याश्रय दोष आता है। और अन्योन्याश्रयाणि कार्य्याणि शास्त्रे न प्रकल्पन्ते। जो परस्पर एक दूसरे का आश्रय रक्खे वह परस्पर-

सापेक्ष कहलाते हैं। उसी को अन्योऽन्याश्रय कहते हैं वह अन्योन्याश्रय कार्य शास्त्र में नहीं ग्रहण किये जाते हैं इस वास्ते दो सूत्र बनाये।

वि.—गुरु जी अन्योन्याश्रय कैसे आता है।

गु०—एक हलन्त्यम् हो तो उसका क्या अर्थ हो।

वि०—उपदेश में अन्त्य हल् इत्संज्ञक हो यह अर्थ हुआ।

गु०—बेटे यह अर्थ नहीं बन सकता है। क्योंकि 'वाक्यार्थ विषयक शाब्द बोधं प्रति पदार्थ ज्ञानस्य कारणता वाक्यार्थ विषयक शाब्द बोध के प्रति पदार्थ ज्ञान को कारणता होती है वाक्य कौन उपदेशेऽन्त्य हलित्स्यात् अर्थ कौन उपदेशों में अन्त्य हल् इत्संज्ञक हो इस अर्थ विषयक शाब्द बोध में प्रत्येक जो पद है उपदेश-अन्त्य-हल्-इत् इन के अर्थों को कारणता है। यहां उपदेश तो लिख दिया है-उपदेशआद्यो अन्त्य शब्द का आदिरन्त्येन इस गत सूत्र में बोध हो गया। अब हल् क्या-वस्तु है यह बतलाओ और जब तक हल का ज्ञान न हो तब तक सूत्र का वाक्यार्थ हो ही नहीं सकता है।

वि०—गुरु जी हल् करके हम हल् प्रत्याहार लेते हैं ह से ल् तक।

गु०—बेटे हल् प्रत्याहार किस सूत्र से बना।

वि०—आदिरन्त्येन० इससे बना।

गु०—इसका क्या अर्थ है।

वि०-अन्त्यइत् सहित आदि मध्यमें रहने वाले वर्णोंका बोधक हो।

गु०—यहाँ भी तो कहेंगे कि वाक्यार्थ विषयक इत्यादि से पदार्थ ज्ञान को कारणता है। यहाँ इत् शब्द का क्या अर्थ है।

वि०—इत् का अर्थ है इत् संज्ञा।

गु०—इत् संज्ञा किसने की।

वि०—हलन्त्यम् ने की है।

गु०—बेटे उस में भी तो वाक्यार्थ इस नियम से इत् ज्ञान विना हल् ज्ञान के नहीं हो सक्ता। और हल् ज्ञान इत् ज्ञान केविना नहीं हो सकता यही परस्पर सापेक्ष होते हैं। इसको अन्योन्याश्रय कहते हैं। इस वास्ते दीक्षित ने हलन्त्यम् की आवृत्ति की है द्विरुच्चारणमावृत्तिः।

वि—अब तो अन्योन्याश्रय नहीं रहा।

गु०—बेटे अबतो प्रथम हलन्त्यम्से हल् जो चौदहवां सूत्र है उसके अन्त्य ल् की इत्संज्ञा करलो अब इत का ज्ञान होगया इत् ज्ञान होने से आदि रन्त्येन इस का वाक्यार्थबोध हो गया। अब हल् प्रत्याहार बन गया हल् के बनने पर दूसरे (हलन्त्यम्) का वाक्यार्थ हो गया इससे अन्य प्रत्याहार बन गये। इस आशय से लिखा है इति हल् संज्ञायाम्। सप्तम्यन्त पाठ इतर संज्ञा को सूचित करता है।

वि०—आवृत्ति में क्या प्रमाण है।

गु०—न विभक्तौ तुस्माः यह सूत्र ही प्रमाण है। क्योंकि प्राप्तौ सत्यां निषेधः इत् संज्ञा पावे तब निषेध हो। इत् संज्ञा करने वालों का तो वाक्यार्थ ही नहीं हुआ फिर निषेध कैसा इससे जानते हैं कि हलन्त्यम् की आवृत्ति की है।

वि०—हम आवृत्ति के विना ही कार्य चलालेंगे। हल् इस सूत्र के स्थान में हलं पढ़ेंगे और लं की उपदेशेऽज० इससे इत्संज्ञा करके हल् बनायेंगे।

गु०—बेटे उसमें भी तो अच् है। अच् प्रथम बनजायगा तब लं की इत्संज्ञा हो सक्ती है।

वि०—अच्छा हम यह कहेंगे कि हल् में पाणिनि जी ने ल् को स्वयं इत्संज्ञक पढ़ा है अन्योन्याश्रय नहीं है।

गु०—बेटे इस में क्या प्रमाण है कि ल् इत्संज्ञक पढ़ा है।

वि०—गुरू जी न विभक्तौ। यह सूत्र ही प्रमाण है। यदि हल् प्रत्याहार नहीं होते तो हलन्त्यम् इत्संज्ञा कैसे करता और न विभक्तौ निषेध किसका करता इससे जानते हैं हल् में ल् स्वयमेव आचार्य ने इत्संज्ञक पढ़ा है।

गु०—छात्रों को इस बात का ज्ञान नहीं होता इस वास्ते आवृत्ति की है।

वि०—अच्छा हम हलन्त्यम् एक ही सूत्र रक्खेंगे और हल् का एक शेष करेंगे। हल् च हल् च हलौ तयोरन्त्यम् हलन्त्यम् एक हल् का अर्थ करेंगे हल् का ल् इत्संज्ञक हो दूसरे का वही अर्थ करके कार्य चलावेंगे फिर आवृत्ति क्यों की। अथवा हलन्त्यममें हल् को तन्त्र मानलेवेंगे (द्वयर्थ बोधकत्वं तन्त्रत्वम्) फिर अर्थ वैसा ही करेंगे फिर क्यों गौरव किया।

गु०—एक शेष और तन्त्र में छात्रों को ज्ञान नहीं होता इस लिये आवृत्ति की है। हलन्त्यम् में हल् को ह से ल् तक रूढ़ि संज्ञा मान लेवें तो आवृत्ति करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

वि०—रूढ़ि मानने में प्रमाण क्या है।

गु०—हलन्त्यम् यह सूत्र ही प्रमाण है। अन्यथा व्यर्थ हीहो जाता है।

वि०—उपदेश पदार्थः कः उपदेश किसे कहते हैं।

गु०—उपदेश आद्योच्चारणम्। यहाँ उप का आदि अर्थ है और दिश का उच्चारण अर्थ है। इस वास्ते आद्योच्चारणम् यह अर्थ हुआ।

वि०—किस का आद्योच्चारणम्।

गु०—उपस्थितत्त्वात् इस शास्त्र के करने वाले पाणिनीय कात्यायन पतञ्जलि महेश्वर के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं। ततोऽण जिति। हलन्त्यम् इस का वाक्यार्थ होने से अण् अच् इत्यादि संज्ञा सिद्ध हो गई। यहां भी सप्तम्यन्त पाठ उपदेशे ऽ जनु इस के वाक्यार्थ को सूचित करता है। उपदेश में अनुनासिक अच् इत्संज्ञक हो। ननु व्याकरणेऽनुनासिक चिन्हस्य लेख प्रमादादि दोषेण परि भ्रष्ट त्वादाह। प्रतिज्ञा। प्रतिज्ञायत इति प्रतिज्ञा। अनुनासिकस्य भाव आनुनासिक्यम्। प्रतिज्ञा नुनासिक्यम् येषाँ ते। पाणिन्यादिकों से कहे हुए वर्ण प्रतिज्ञा विषयक अनुनासिक धर्म वाले जानने। प्रतिज्ञाच अयमनुनासिक इति साक्षात् कथनम्। कुत्र चित् अनुमानात्। अर्थात् सूत्रों के कार्य देखकर अनुनासिक जानलो। जैसे सु और जस् यहाँ स् में उ अनुनासिक है; प्रत्ययःइत्यादि सूत्रों में विसर्ग देखने से। ननु कृष्णर्द्धिरित्यत्र उरण रपरइत्यनेन ऋकारस्य अर् भविष्यतिपरन्तु तवल् कार इत्यत्र अल् कथं स्यात् इत्याशयेनाह।

लण सूत्रस्था० । लण् सूत्रस्थ जो अवर्ण उसके साथ उच्चार्यमाण जो रेफ वह रल का बोधक हो । लँण् में अकार की इत्संज्ञा करके आदिरन्त्येन से र प्रत्याहार बनाकर कार्य करो । ननु रलयोः संज्ञा इति कथ कुतः टकारस्यापि मध्यगतत्वेन रद्लानामित्युचितम् । रलयोः कहना ठीक नहीं क्योंकि टकार भी मध्य में आगया अतः रटलानां कहना चाहिये इस वास्ते कहते हैं–प्रत्याहारेष्वितां न ग्रहणम् । प्रत्याहारों में इत्संज्ञक का ग्रहण नहीं होता है । प्र० क्या प्रमाण है । उ० अनुनासिक इत्यादि० । नह्यत्र० । यहां ककार परे रहते इ का य् नहीं किया है इससे जानते हैं कि प्रत्याहारों में इत्संज्ञक का ग्रहण नहीं होता ।

वि०—गुरु जी यहां तो कोई दोष नहीं हो सकता । क्योंकि णमु धातु से ण्वुल् प्रत्यय होता है । वु को अक् होता है टाप् होता है प्रत्ययस्था० इससे क में अकार को इ होकर अनुनासिक शब्द बनता है । अब यहांपर यण् हो ही नहीं सकता है, क्योंकि यदि हो जाय तो 'प्रत्ययस्था०' यह सूत्र ही व्यर्थ हो जावगा । क्योंकि जहां २ क से पूर्व इ मिलेगा वहां २ प्रत्यय स्थाः से हुवा मिलेगा, अतः तो लाघवात् 'प्रत्य- यस्थात्कात्पूर्वस्य यदाप्यसुपः' ऐसा ही सूत्र कर देगें । इकोयणचि लगाने की अवश्यक्ता ही न होगी । पुनः इकार विधान क्यों किया वही व्यर्थहोकर ज्ञापन करता है कि यण् नहीं होता है पुनः अनुनासिक० इत्यादि निर्देशात् कैसा ।

गु०—प्रत्यस्थात् से किया हुआ इत्व विधान व्यर्थ नहीं है क्योंकि यहां 'इको सवर्णे शाकल्पस्य० करके इ को विकल्पसे ह्रस्व करेंगे तो जहाँ ह्रस्व हो गया है वहां ह्रस्व विधान सामर्थ्य से यण की प्राप्ति नहीं है । इस वास्ते प्रत्ययस्थात् सूत्र का इत्व विधान

चरितार्थ हो गया व्यर्थ नहीं। और ह्रस्व अभाव पक्षमें अनुनासिक इत्यादि निर्देश भी ठीक हो गया।

वि०—इको सवर्णे० में तो चकार से प्रकृति भाव का अपकर्ष किया है तो प्रकृति भावहो जायगा फिर यण् की प्राप्ति ही न रहेगी फिर निर्देश कैसा।

गु०—ह्रस्व विधान सामर्थ्यादेव प्रकृतिभावेसिद्धे तदनुकर्षणार्थश्चकारो न कर्त्तव्य इति भाष्ये स्थितम्। इस वास्ते इस चकार से प्रकृति भाव नहीं आता है इस लिये अनुनासिक निर्देश ठीक ही है।

वि०—अच्छा अनुनासिकः यहां पर क को अच् मानने से यस्ये ति० से इकार लोप क्यों नहीं होता है।

गु०—बेटा यहां तो कृदन्त एवुल् किया है अजादि तद्धित प्रत्यय परे नहीं है इस वास्ते लोप नहीं होता है।

वि०—अच्छा हम णास्तृ धातु से गुरोश्च हलः इससे अ प्रत्यय करके और टाप्प्रत्यय करके फिर संज्ञायां कन् इससे तद्धित में कन करके 'केऽण' से ह्रस्व करके और उदीचामा०से इत्व करके नासिका बनायेगें-तब तो यस्येति च करके लोप हो जायगा।

गु०—फिर भी अनुनासिक इत्यादि निर्देशात् यह कथन हमारा ठीक ही है क्योंकि अच् का यं लोपभी है लोप क्यों नहीं किया यही प्रमाण है कि "प्रत्याहारेश्चितां नग्रहणम्" द्वितीय बात यह है कि "यस्येति च" अन्तरङ्ग है और 'प्रत्यय स्थात्' 'उदीचामातः' इत्यादि बहिरङ्ग हैं अतः 'यस्येति च' की दृष्टि में इत्व असिद्ध है तो लोप नहीं हो सकता यण् ही प्राप्त है। वास्तविक में यह निर्देश ठीक नहीं है, प्रत्याहारों में अनुबन्ध का ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि 'आचारादप्रधानत्वाल्लोपश्च वल-

वत्तरः' पाणिनीके व्यवहार से अर्थात् अचों को अचों में पठन से और हलों को हलों में पठन करने से अच् प्रत्याहारों में हल्का ग्रहण नहीं होता है । द्वितीय अप्रधानत्वात् अर्थात् आदिरन्त्ये० यह सज्ञा सूत्र है और जितनेसज्ञा सूत्रहोते हैं वे अप्रधान होते हैं और तस्य लोपः यह विधि सूत्र है इस वास्ते प्रधान है–तो प्रधान जो लोप है वह संज्ञा विधायक जो आदि रन्त्ये० सूत्र है उसको बाध कर लोप कर देगा–इस वास्ते प्रत्याहारों में इत्संज्ञक का ग्रहण नहीं होता है । तृतीय बात यह भी है कि प्रत्यय स्थात्०के इत्वादि विधान से साक्षात् इकोयणचि इस विधि शास्त्रके बाधन करने की अपेक्षा गौण जो आदि रन्त्येन० संज्ञा सूत्र है इसका बाधन करलो कि प्रत्याहारों में आदिरन्त्ये० सूत्र इत्संज्ञक का ग्रहण नहीं करता है । इस वास्ते–तृ पि मृषि कृषे-यहां क परे रहते मृषि की इ को य नहीं किया । अनुनासिक इत्यादि निर्देशात् यहां आदि शब्द से एङः पदान्तदति–इत्यादि निर्देश लेना । कोई विद्वान् अनुनासिक इत्यादि निर्देशात् को इस प्रकार कहते हैं कि अनुनासिक के 'क' और 'क' में अ को आचार्यने दीर्घ नहीं किया इससे जानते हैं कि प्रत्याहारों में इत्संज्ञक का ग्रहण नहीं होता है 'नह्यत्र ककारे परे० यहाँ ककारेऽपरे ऐसा कहते हैं कि अ है परे जिसके ऐसा ककार परे रहते ऐसा छेद करते हैं'

वि०—हमने तो र प्रत्याहार के विषय में पूछा था कि अनुबन्ध क्यों नहीं लिया जाता । आपने सम्पूर्ण प्रत्याहारों का उत्तर कैसे किया कि प्रत्याहारेषु० ।

गु०—बेटे बार २ मुझे तंग करते कि यण् आदिक में अनुबन्ध का ग्रहण क्यों नहीं होता इसलिये मैंने सबका समाधान एक साथ कर दिया है ।

'प्रत्याहारेऽनुबन्धानां कथमज् ग्रहणेषु न, इस वार्त्तिक में प्रत्याहार शब्द चतुर्दश सूत्रों में रुढ़ि माना है फिर बहुवचन कैसा। इस वास्ते कहते हैं आदिरन्त्येनेतिसूत्रे० आदिरन्त्येन से जो संज्ञा बनाई गई है उसका हम प्रत्याहार शब्द से व्यवहार करते हैं गृहाः दाराः के समान समझो। अर्थात् इन्हीं सूत्रों से बनते हैं इसलिये ऐसा व्यवहार किया है (प्रत्याहियन्ते वर्णा एकत्रीक्रियन्ते यत्रासौ प्रत्याहारः) प्रसङ्गात् अचां भेद प्रदर्शनाय आह ऊकालो० अत्र ऊकाल शब्दे त्रयाणां उकाराणां क्रमेण श्लेषं दर्शयति। उश्च ऊ२श्च ऊ३श्चेति द्वन्द्व समासे उ ऊ ऊ इति जाते (अकः सवर्णे दीर्घः) इति वार द्वयं दीर्घे ऊ इति रूपं ऊ शब्दात् जसि जकारस्येत्वे लोपे च ऊ अस्-ऊकारस्य इकोयणचि इति वकारे सकारस्य विसर्गे वः इति रूपम् पुनः बहुव्रीहि समासे वः कालो यस्य स ऊकालः

वि०···क्या अर्थ हुआ।

गु०-ऊ है काल जिसका ऐसा अच् क्रमसे ह्रस्वदीर्घ प्लुत संज्ञक हो।

वि०—अजी ऊ तो वर्ण है यह काल हो ही नहीं सकता है।

गु०—ऊ शब्द की स्व उच्चारणाधिकरणीभूतकाल सदृश काल में लक्षणा करदो। वां काल इव यह फलित कथन है उकार त्रय का जो उच्चारणाधिकरणीभूत काल उस काल के सदृश है काल जिसका ऐसा जो अच् वह क्रम से ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञक हो सप्रत्येक० वह ह्रस्वादि संज्ञक अच् उदात्तादि भेद से तीन प्रकार का है। तीन प्रकार का कौन करता है-इस वास्ते कहते हैं:—

उरवै०—भागों सहित जो तालवादि स्थान उन्हों के ऊपर के भागों में उच्चार्यमाण अच् उदात्त संज्ञक हो। निपाता आद्युदात्ताः। इससे आ उदात्त हुआ। यद् यह-किपोन्तोदात्तः-

प्रातिपदिक का अन्त उदात्त होता है य में अ उदात्त । फिर जस् प्रत्यय लाये–यद् जस् अनुदात्तौ सुप्पितौ इससे जस् अनुदात्त । जशः शी–आद्गुणः–इति गुणे । एकादेश उदात्तेनोदात्त इति एकार उदात्तः ।

नीचैर०—भागों सहित जो तालवादि स्थान उन्हों के अधो भागमें उच्चार्यमाण अच् अनुदात्त संज्ञक हो । अर्वाङ् यह अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं । सन्मुख अर्थ का वाचक । फिषोऽन्तोदात्तः इससे 'वा' में आ उदात्त । शेष भाग जो अकार है वह अनुदात्तं पदमेक वर्जम् से अनुदात्त है ।

समाहा०—समाहियन्ते यत्र असौ । उदात्त अनुदात्त की अनुवृत्ति करना । और दात्त अनुदात्त यह वर्ण हैं ।

दो वर्ण एक में नहीं रहते जैसे ब्राह्मण और क्षत्री एक जगह नहीं रहते–इस वास्ते उदात्त और अनुदात्त को धर्म परक करलो । अर्थात् उदात्तत्व और अनुदात्तत्व यह वर्णों के धर्म एकत्रित किये जायं जिससे वह अच् स्वरित संज्ञक हो । उदात्त और अनुदात्त एक में मिल गये । अब हम कैसे जानें कि कौन भाग उदात्त और कौन भाग अनुदात्त है इस वास्ते कहते हैं:—

तस्यादित०—इस सूत्र में अर्ध ह्रस्वम् इसका क्या अर्थ है । ह्रस्वस्यार्धं इति अर्द्धह स्वम्–यदि ऐसा समास किया जाय तो ह्रस्व स्वरित का अर्ध भाग उदात्त जानना और उत्तरार्ध परिशेष से अनुदात्त जानना यह अर्थ होगा:—

वि० तब तो दीर्घ प्लुत में सूत्र नहीं लगेगा ।

गु० इस सूत्र में ह्रस्व ग्रहण मन्त्रम । ह्रस्व ग्रहण अविवक्षित है अर्थात् पुण्य पाठार्थ है । अथवा स्वशास्त्र संकेतित रूप से

अर्थ बोधजनक नहीं है किन्तु अर्ध ह्रस्व शब्द अर्ध मात्रा में रूढ़ है (अर्ध ह्रस्व=आधी मात्रा) चाहे वह ह्रस्व स्वरित की हो। चाहे दीर्घ–चाहे प्लुत–सब का ग्रहण करना चाहिये। अर्धो ह्रस्वो यस्मिन् स्वरिते–इति कृतेतु न कुत्रापि दोषः (अधिकंमत्कृत प्रभायाम्)

शं। स्वरित में उदात्तत्व और अनुदात्तत्व दो भाग मिले हैं अब उसका उच्चारण कैसे होगा इस वास्ते कहते हैं।

तस्य चोदात्त० तस्य अनुदात्तस्येत्यर्थः। प्रति शाख्य में इन्हों का उच्चारण प्रसिद्ध है। कवोऽत्राः। 'किमोऽत्' इस से अत् प्रत्ययः 'कांति' इससे किम् के स्थान में कः। तित्स्वरितं इससे क में अ स्वरित है। व इति-युष्माकं स्थाने। अनुदात्तं सर्व मपादादौ इति अनुदात्तम्॥ दीर्घ स्वरित का 'रथानां न येऽराः। यहां य में ए 'स्वरिते वाऽनुदात्ते पदादौ' इस से स्वरित है। स्वरित परक का उदाहरण–शतचक्रं योऽद्यः 'उदात्त स्वरितयोः इति स्वरितः। अकारस्य पूर्व रूपे 'एकादे० इति स्वरितः। स्वरित से स्वरित परक का उदाहरण है।

मुखनासि०। मुखञ्च नासिका च मुखनासिका तया सहितः मध्यम पद लोप करजो। मुख सहित नासिका करके उच्चार्य माण वर्ण अनु नासिक संज्ञक हों। इसने वर्णों के दो भेद किये तदित्थम्। तस्मात्कारणात् इत्थं सिद्धम्। ऊकालो० से लेकर यहां तक यह बात सिद्ध हुई। अ इ उ ऋ। एषाँ वर्णानां। सवर्ण संज्ञा के वास्ते कहते हैं।

तुल्यास्य०। तोलनं तुला तुलया समितं तुल्यम्। अत्यति

वर्णा अनेनेति आस्यम्। प्रकृष्टो यत्नः प्रयत्नः। आस्यं च प्रयत्नश्च आस्य प्रयत्नम्। तुल्यं आस्य प्रयत्न यस्य तत्। समानं वर्ण सवर्णम् तालवादि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न यह दोनों जिस वर्ण के जिस वर्ण के साथ एक हों वह सवर्ण संज्ञक हों। स्थानस्यप्रयत्नस्य च सूत्रे पटनादाह। अकु०। कस्य किं प्रयत्न मित्याह तत्रेति। ननु सर्वे वर्णाः पूर्वप्रयत्नेषु समाप्ताः सम्वृत प्रयत्न कस्येत्याह। ह्रस्वस्या० हस्व अकार का सिद्ध किये हुए प्रयोग में संवृत प्रयत्न है। ननु दण्ड–आनयन-मित्यत्र डकार वृत्ति रकारस्य सवृत्तः आनय आकारस्य च विवृत्तः प्रयत्न भेदेन सवर्ण संज्ञाया अभावाद् दीर्घो न स्यात्। अत आह प्रक्रिया०। साधन अवस्था में तो अ भी विवृत ही है। इस वास्ते दीर्घ होगया। ह्रस्व के प्रयोग में संवृत होता है इस में क्या प्रमाण इस लिये कहते हैं। तथा हि। सूत्रं दर्शयति। अ अ इति यहां प्रथम अ विवृत है और द्वितीय संवृत है तो क्या अर्थ हुआ अ को अ हो। अर्थात् विवृत के स्थान में संवृत हो। इस वास्ते कहते हैं। विवृत मनूद्य० विवृत्त कह कर संवृत इसने विधान किया। जहां २ साधु प्रयोगों में विवृत हो वहां २ संवृत इससे करके बोलो वेद मन्त्रों में तथा व्याकरण में। परन्तु दीर्घादि कार्य करने में विवृत समझो

वि०—इसमें क्या प्रमाण है कि संधि आदि करने में विवृत समझे सूत्र ने तो संवृत किया है। इस वास्ते कहते हैं। अस्य चेति० अस्य अर्थात् अ अ इत्यस्य। असिद्ध कौन कहता है इस वास्ते कहते हैं तथा चेति० पूर्वत्रा०। यहां पूर्व शब्द सम्बन्धी शब्द होने से पर शब्द का आद्याहार करना। तो क्या अर्थ हुआ

पूर्व के प्रति पर शास्त्र असिद्ध हो। यह सूत्र ८-२-१ के पाद का प्रथम सूत्र है इसके पहिले (प्रथम में) ७ अध्याय और अष्टम का १ पाद है बाकी तीन पाद इससे चले हैं तो इसके पूर्व सवा सात बचे इस वास्ते कहते हैं सपाद सप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा०। और यह अधिकार सूत्र भी है इस वास्ते कहते हैं अधिकारोयम् अर्थात् ८-२-१ से अष्टम के ३ पाद में अधिकार जायगा इस वास्ते यह अर्थ होगा तेन त्रिपाद्यामपिपूर्वम्प्रति० त्रिपादिकों में भी पूर्व के प्रति पर शास्त्र असिद्ध हो। जैसे अपने के आगे के ८-२-२ के 'न लोपःसुप्स्व०' में अधिकार जायगा और यह कहेगा 'परस्मिन् कर्त्तव्ये इदम् न लोपः सुप्० इति असिद्धम्। भाष्यकार ने इसे विधि और अधिकार दोनों माना है। और यह शास्त्रों को असिद्ध करता है कार्यों को नहीं।

किस वर्ण का कौन प्रयत्न है इस वास्ते कहते हैं।

स्वयंयमा इति० स्वय् प्रत्याहार और स्वय् सम्बन्धी यम चार लेना कच ट त, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, विसर्ग, श,ष, स, एते श्वासानुप्रदाना० श्वास प्रयत्नवन्तः। अघोषाश्च। अघोष प्रयत्न है। विवृण्वते कण्ठम्-कण्ठ को खोलते हैं इस वास्ते विवृत प्रयत्न है। अन्येतु हश् और हश् सम्बंधी यमोंका। यह कारिका अन्त में देखो। तुल्यास्य० सूत्र में प्र लगाने से आभ्यन्तर का ग्रहण होता है इस वास्ते वाह्य प्रयत्नों का यहां क्या कार्य था इस वास्ते कहते हैं वाह्य प्रयत्नाः० वाह्य प्रयत्न यद्यपि सवर्ण संज्ञा में उपयोगी नहीं है तथापि आन्तरतम्य' स्थानेऽन्तरतम' में उपयोगी हैं। ऋलृवर्णयोः। आच् लृ वर्णश्चेति स मास :। भिन्न स्थान वाले ऋलृ वर्णों की भी सवर्ण संज्ञा कहना।

अकार हकार्यो०—विवृत मूष्मणां स्वराणां च इससे शसप ह का और स्वरों का एक विवृत प्रयत्न माना है तब तो अकार और हकार का कण्ठ स्थान और विवृत प्रयत्न है। इसी प्रकार इ का और शकार का तालु स्थान और विवृत प्रयत्न, ऋकार और षकार का मूर्धा स्थान विवृत प्रयत्न होने से सवर्ण संज्ञा पाई इस वास्ते कहते हैं।

नाञ्झलौ०—यहाँ नकार के आगे आकार का प्रश्लेष करो और यह समास आ–आकारेण सहितः–आ सहितः–आसहितोऽच् इति आच् सहित पद का 'शाक पार्थिवादित्वात्' लोप हो गया और आ अ का दीर्घ आच् बना अब आच् च हल्च + आञ्झलौ यह द्वन्द्व समास कर दो। आ और अच् यह हलोंके साथ सवर्ण संज्ञक नहीं होते हैं। सवर्ण संज्ञा के निषेध का क्या फल हुआ इस वास्ते कहते हैं–दधि हरति इति। यहां पर हकार का अकारके साथ कण्ठस्थान विवृत प्रयत्न होनेसे तुल्यास्य करके सवर्ण संज्ञा होती है–और अणुदित्स० करके ग्राहकता होती है क्योंकि हकार अणों में आ जाता है और अकार भी अणों में आ जाता है इस वास्ते यह दोनों एक दूसरे का ग्रहण कर लेते हैं तो दधि में इकार का य् हो जाता क्योंकि अच् परे हकार है इसी प्रकार शीतल में ई से श लियाजाता तो अकः सव०से दीर्घ हो जाता। षष्ठम् में ऋ से ष लिया जाता तो यण् हो जाता–इस वास्ते निषेध किया है। 'अन्यथा इति–यदि सूत्र नहीं करेंगे तो 'दीर्घादिनामिव' जैसे ग्राहक शास्त्र से ह्रस्व अक् से दीर्घ अक् लिये जाते हैं वैसे ही हकारादि भी लिये जांयगे तो अच् धर्म वाले हो जांयगे तो पूर्वोक्त दोष आवेगा इस वास्ते नाञ्झलौ सूत्र किया है तथाहि इति–ग्राहक

शास्त्रं दर्शयति ग्राहक शास्त्र को दिखाते हैं–

अणुदित्स० इति०—अत्र प्रत्यय शब्देन 'प्रत्ययः' इति संज्ञा न गृह्यते किन्तु–प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । यौगिकस्यात्र ग्रहणम्–इत्याशयेनाह–अविधीयमान इति । यदि प्रत्यय शब्देन संज्ञा गृह्यते चेत्तदा इदम् ईश् इत्यत्रापिद्विमात्रिकादीनां ग्रहणं स्यात् । अविधायमान इत्यस्य–अणि एवान्वयः । न तु उदिति । तेषां उदितां (कुचु टु तु पु आदिनाम) सर्वत्र विधीयमानःअविधीयमानवत्वाच्च । अविधीयमान अण् और अविधीयमान विधीयमान उदित्सवर्ण के ग्राहक हों । (जैसे इको यणचि) इत्यादिकों में इ से सब इकारों का ग्रहण है । उदित् चोः कुः–इत्यादि । कुचुटुतुपु यह उदित् हैं ।

वि०—अण् प्रत्याहार दो हैं पूर्व–ण् तक और पर–ण्–तक इसमें किसका ग्रहण किया जाय ।

गु०—अत्रैवाण् परेण णकारेण । इसी में अण् पर णकार से लेना अन्यत्र नहीं । वि० क्या प्रमाण है । गु० वृद्धि रादैच् में तपर करण ही प्रमाण है क्योंकि आ के साथ तो तपर करण का कुछ फल है ही नहीं आ अणों में नहीं आता है ह्रस्व अकारादि अणों में आते हैं अब पूर्व ण तक अण् लेने में–ऐ औ का भी अणों में ग्रहण नहीं होगा । इस वास्ते तपर करण के अभाव में भी दीर्घ ही ऐ औ लिये जावेंगे पुनरुक्त नहीं । पुनः आत् का तपर करण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है अत्रैवाण् ० । कोई इसमें 'उपसर्गादति धातोः' इसके तपर करण को व्यर्थ करके इस प्रकार ज्ञापन करता है कि ऋ तो अणों में आवेगा नहीं जिससे तुम

दीर्घ ऋकार का ग्रहण करो पुनः तपर करण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है 'अत्रैवाण०'। यह तपर व्यर्थ नहीं है क्योंकि तपर करने से (तपरस्तत्कालस्य) इस सूत्र से ऋकार से लृकार का ग्रहण होता है और ऋति की अनुवृत्ति वासुप्या० में जाती है और उसका यह अर्थ है कि अवर्णान्त उपसर्गसे ऋकारादि अथवा लृकारादि सुप् धातु परे रहते वृद्धि हो तब प्र-लृकारीयति-प्रालकारीयति यह बनता है इस वास्ते उपसर्गाद्दति० में तपरकरण किया है व्यर्थ नहीं है। इसी प्रकार (ऋतउत्) इसमें ऋत के तपर करण को प्रमाण देते हैं यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि यहां भी तपरस्तत्कालस्य इस सूत्रसे-ऋकार से लृकार का ग्रहण होकर गम्लृ शब्द का षष्ठी विभक्ति में (ऋतउत्) से उल् होकर गमुल् रूप हो इस वास्ते यह तपर करण व्यर्थ नहीं है। कदाचित् यह कहो कि 'उर्ऋत्' उपधा के ऋ को ऋ हो 'अचीकृतत् यहाँ ऋ को इसने ऋ किया तो ऋकार अणों में आता नहीं इस वास्ते ऋ को ह्रस्व ऋ हुआ ही करेगा पुनः तपरकरण व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा अत्रैवाण्। सो भी ठीक नहीं क्यों कि यह ऋकार तो विधीयमान है और विधीयमान सवर्ण का बोधक नहीं होता है इस वास्ते यह व्यर्थ नहीं है। दूसरे अजगम्लृपत् यहां (उर्ऋत्)सूत्र का तपरकरण चरितार्थ है क्यों कि ऋ से लृ का भी ग्रहण होता है इस वास्ते यह भी तपरकरण व्यर्थ नहीं है 'वृद्धिरादैच्' का तपर करण ही प्रमाण देने योग्य है।

तदेवमिति० सो इस प्रकार अ इउ ऋ यह १८ केबोधक हैं। तथेति-तैसे ही इकार उकार भी अठारह के बोधक हैं। ऋकार इति-ऋकार तीस का बोधक है। ऋ ल की सवर्ण संज्ञा होने से

एवं ऌ०। इसी प्रकार ऌ भी तीस का बोधक है। एचो द्वादशानाँ एच् बारह के बोधक हैं। एकार ऐकार का कण्ठ तालु स्थान और विवृत प्रयत्न है-तथा ओ औ का कण्ठ ओष्ठ स्थान और विवृत है-तो तुल्यास्य० सूत्र से सवर्ण संज्ञा होनी चाहिये इस वास्ते कहते हैं एदैतोरिति० ए ऐ और ओ औ आपस में सवर्ण नहीं होते हैं।

वि०—इसमें क्या प्रमाण है कि यह सवर्ण नहीं होते हैं।

गु०—ऐऔजिति सूत्रारम्भ सामर्थ्यात्, यदि सवर्ण होते तो ए से ऐ और ओ से औ लिया ही जाता फिर ऐऔच् पृथक् सूत्र क्यों किया यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि ए ऐ, ओ औ सवर्ण नहीं होते हैं। तेनैचश्चतुर्विंशतेः संज्ञा स्युरिति नापादनीयम्। इसी वास्ते एच् २४ के बोधक हैं यह नहीं कहा।

वि०—यदि ऐऔच् नहीं करते तो वर्णज्ञान कैसे होता कि ऐ औ भी वर्ण हैं।

गु०—जैसे अ के सवर्ण आकार की सत्ता का ज्ञान होता है वैसे ही ए ओ से ऐ औ का ज्ञान हो जायगा।

वि०—अच्छा वृद्धिरादैच् में क्या करेंगे यहां ऐच् पद है ऐच् तो रहे ही नहीं।

गु०—यहाँ वृद्धिरादेङ् पढ़ देंगे तब दोष नहीं होगा।

वि०—ए ओ की भी वृद्धि संज्ञा हो जायगी यह दोष होगा।

गु०—तुम तो सवर्ण संज्ञा करने वाले देवता हो तुम ही कहो कि ए ओ ऐ औ की सवर्ण संज्ञा होने से ए ओ की वृद्धि संज्ञा क्यों नपों नहीं हुई जैसा तेरे कथन में दोष वैसा ही मेरे में भी

दोष है तो इस और तू बराबर ही है। यत्रोभयोः समो दोषस्तत्र प्रतिहारोपि तादृगेव।

वि०—अच्छा 'एचोयवायावः' यहां क्या करोगे।

गु०—यहां पर 'एओऽयवायावः' पढ़ देंगे और 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र से ए ओ इन संवृत वर्णों के स्थान में अय् अव् यह संवृत आदेश करेंगे और ऐ औ यह विवृत हैं इस वास्ते इन्होंको आय् आव् यह विवृत हो जायंगे तो कार्य चल जायगा क्याकि ए ओ को संवृत माना है और ऐ औ को विवृत माना है कारण यह है कि अ उ से ओ और अ इ से ए बना है इस वास्ते संवृत भाग मिला है ऐ औ में विवृत आ का भाग है तो कोई दोष नहीं है।

वि०—न ष्वाभ्यां०.....ऐच् यहाँ क्या करोगे ऐच् पढ़ा है।

गु० यहां ऐ औ ऐसा स्वरूप से पढ़ देंगे यद्यपि एक स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर ऐ औ करने पड़े तथापि 'ऐऔच्' का चकार व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि एदैतो रिति०।

वि०—गुरूजी आकार हकार का कण्ठ स्थान और विवृत प्रत्यन होने से 'तुल्यास्य०' से सवर्ण संज्ञा होकर और हकार अणों में आने के कारण अणुदित्स० से हकार अपने सवर्ण आकार का भी ग्रहण करेगा इस लिये विश्वपाभिः में-आ-को 'हो ढः' से ढ होकर विश्वपढ्भिः ढकार का संयोगान्तस्य से लोप होकर विश्वब्भिः ऐसा होना चाहिये।

गु०—आकार अचों में और हकार हलों में आने से नाऽझलौ सवर्ण संज्ञा का निषेध कर देगा इस वास्ते ह का ढ नहीं होगा

तो विश्वपाभिः में भा कोई दोष नहीं है।

वि०—गुरूजी अचों में तो वर्ण समाम्नाय पठित हस्व अकार आया है दीर्घ आकार तो आया ही नहीं जिसका नाञ्झलौ से निषेध करें इस वास्ते विश्वपाभिः में दोष है।

गु०—प्रिय पुत्र जैसे इकोयणचि में इकार से सब दीर्घादि ईकार के लिये जाते हैं इसी प्रकार नाञ्झलौ में भी अच् से दीर्घादि आकार अणुदित्स० इस ग्राहक सूत्र से लिये जायंगे इस वास्ते दोष नहीं है।

वि०—'नाञ्झलौ में अच् से वर्ण समाम्नाय पठित हस्व अकारादि लिये जाते हैं दीर्घादि नहीं इस वास्ते हस्व अकारादि और हल् इन्हों की सवर्ण संज्ञा का निषेध करेगा तो विश्वपाभिः में 'हो ढः' लगना चाहिये।

गु०—'नाञ्झलौ'-वर्ण समाम्नाय पठित हस्व अकारादिकों में ही क्यों लगता है।

वि०—पूर्व वर्णानामुपदेशास्तदुत्तर मित्संज्ञा तदुत्तर मादिरन्त्येनेति प्रत्याहार सिद्धिस्तदुत्तरकाला सवर्णसंज्ञा तदुत्तरकाला अणुदित्स० इति ग्राहकता। प्रथम अइउण् इत्यादि वर्णों का उपदेश है। फिर हलन्त्यम् से इत्संज्ञा होती है। फिर 'तुल्यास्य०' से सवर्ण संज्ञा होती है। फिर सवर्ण संज्ञा होकर 'अणुदित्०' से ग्राहकता होती है। यह भाष्यकार का पञ्चधा महावाक्य है। इस पञ्चधा महावाक्य में सवर्ण संज्ञा का प्रतिपादन है अब 'तुल्यास्य०' यह सवर्ण संज्ञा कब करेगा जब कि इसके निषेध सूत्र का वाक्यार्थ प्रथम बन जायगा। "क्योंकि अपवादविषयं परित्यज्य तत उत्सर्गोऽभि निविशते" अपवाद विषय को छोड़ कर फिर

उत्सर्ग शास्त्र का प्रवेश होता है– तुल्यास्य' यह उत्सर्ग शास्त्र है नाञ्झलौ अपवाद है–इस वास्ते प्रथम 'नाञ्झलौ' के वाक्यार्थ बोध की अपेक्षा 'तुल्यास्य' सूत्र को रहती है यदि 'नाञ्झलौ' निषेध-सूत्र का वाक्यार्थ बोध प्रथम नहीं करेंगे तो 'तुल्यास्य' सब की सवर्ण संज्ञा कर देगा तो भुक्तवन्तं प्रति मा भुङ्क्थाः खाये हुये को। कहा जाय कि नखा तो क्या हो सकता है वह तो भोजन कर चुका निषेध करना व्यर्थ है। इस वास्ते 'नाञ्झलौ' यह निषेध शास्त्र, विधि जो तुल्यास्य सूत्र है उसमें संकोच करा देगा कि अच् हल् से भिन्न जो बराबर प्रयत्न स्थान वाले वह सवर्ण संज्ञक हों। अब प्रथम नाञ्झलौ का वाक्यार्थ हुवा। पश्चात् तुल्यास्य का हुवा तो नाञ्झलौ के वाक्यार्थ बोध के समय 'तुल्यास्य०' जो सवर्ण संज्ञा करने वाला है इसका वाक्यार्थ ही नहीं था फिर 'नाञ्झलौ' के अच् में कैसे प्रवृत्त होता इसी वास्ते भाष्यकार ने कहा है "न स्वस्मिन्नापि स्वाङ्गे" ग्राहक शास्त्र न तो अपने में न स्वाङ्ग (नाञ्झलौ) में क्योंकि सवर्ण संज्ञा 'नाञ्झलौ' के बाद में होती है। जब संज्ञा ही नहीं होती तो ग्राहकता शक्ति भला कैसे हो सकती है इस वास्ते कहते हैं 'नाञ्झला विति०' 'नाञ्झलौ' यह अक्षर समाम्नाय में पठित अकारादिकों की सवर्ण संज्ञा का निषेध करता है दीर्घ आकार और हकार की नहीं इस वास्ते विश्वपाभिः में गुरुजी महाराज दोष बना ही रहा।

गु०—प्रिय पुत्र तुमने 'नाञ्झलाविति' निषेधो यद्यपि अक्षर समाम्नायिकानामेव' यहां पर 'यद्यपि' पर ध्यान नहीं दिया था आधा पाठ देख गये–इस वास्ते–ऐसा कहो कि यद्यपि 'नाञ्झलौ यह सूत्र अक्षर समाम्नाय में पठित वर्णों की ही सवर्ण संज्ञा का

निषेध करता है तथापि 'आकाररयहकारो न सवर्णः' तब भी आकार का हकार सवर्ण नहीं होता है क्योंकि 'तत्राऽकारस्यापि प्रश्लिष्टत्वात् 'नाज्झलौ' में आकार का प्रश्लेष होने से अर्थात् 'नाज्झलौ' सूत्र में आकार का प्रश्लेष करो और यह समास करो 'आकारेण सहितोऽच्आच् आच्च हल्च आज्झलौ।' दीर्घ आकार सहित अच् हलों के साथ सवर्ण नहीं होते हैं। इस वास्ते विश्वपाभिः में कोई दोष नहीं है इस वास्ते कहते हैं 'तेन विश्वपाभिरित्यत्र 'होढः' इति ढत्वं न भवति' 'नाज्झलौ' के निषेध होने पर विश्वपाभिः में 'होढः' से ढत्व नहीं हुआ।

वि०—महाराज आकार प्रश्लेष करने में प्रमाण क्या है।

गु०—बेटे 'काल समय वेलासु तुमुन' इस सूत्र में आको इण् मान कर स का ष नहीं किया यही प्रमाण है।

वि०—अच्छा गुरुजी हे यिया३ सो हे पिपा३ सो यहां 'गुरोरनृतो०' से आकार प्लुत हो गया और सूत्र में दीर्घ आकार का प्रश्लेष होने के कारण दीर्घ आकार हकार की सवर्ण संज्ञा का निषेध किया है इस वास्ते प्लुत आ३ और ह सवर्ण हो जायंगे इस वास्ते 'आदेश प्रत्यययोः' से स को ष होना चाहिये।

गु०—उक्त भाष्य प्रयोग से 'नाज्झलौ' में प्लुत आकार का भी प्रश्लेष है आश्च, आश्च औ आभ्यां सहितोऽच् इति आच्। आच् हल्च आज्झलौ इति॥ ईषद्विवृतमूष्मणां विवृतं स्वराणां' यह लघु कौमुदी के समान पाँच प्रयत्न मान लेवे तो सवर्ण संज्ञा का झगड़ा भी नहीं करना पड़े और 'नाज्झलौ' सूत्र की भी आवश्यकता नहीं रहें। परन्तु यह पांच प्रयत्न नहीं है यदि होते तो

आचार्य पाणिनिजी 'नाज्झलौ' क्यों बनाते । इससे जानते हैं कि ऊष्माण ईषद्विवृत नहीं होते हैं किंतु विवृत ही होते हैं भाष्यकार ने जो खण्डन किया है उसका तात्पर्य लोग नहीं समझते हैं उन्होंने केचित्का सिद्धान्त लेकर किया है अपना नहीं । दूसरे दीक्षित ने सूत्र की सत्ता में शंका समाधान किया सूत्र के अभाव में नहीं इस वास्ते दीक्षित जी की उक्ति सत्य है ।

अनुनासिका० अनुनासिक और अननुनासिक भेद से य व ल दो प्रकार के हैं (य यँ ल लँ व वँ) तेन 'अणुदित्०' सूत्र में अण् पर णकार से लेने के कारण (ते) वे अनुनासिक (य व ल) दो दो के ग्राहक हैं । अननुनासिक से अनुनासिक का भी ग्रहण करना । जैसे (यवलपरे यवला वा) यहां अनुनासिक य व ल का ग्रहण होता है । 'तपरस्तत्का०' यहां तपर की आवृत्ति करना 'तपरः तपरः' 'अतो भिस्ऐस्' में तपर करण करने के कारण, तः परो यस्मात् असौ एक ता यह बहुव्रीही समास है और 'सहि वहोरोदवर्णस्य में सहि वहोरोदस्य करना था फिर अवर्ण ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि तात्परः तपरः यह भी समास है । तकार है परे जिस से और तकार से परे उच्चार्यमाण वर्ण स्वसवर्ण सम काल का ही बोधक हो अधिक का नहीं हो । इस वास्ते अत् इत् उत् इत्यादि अपने सवर्ण एक मात्रिक ह्रः ह्रः के बोधक हो गये ऋ ऌ सवर्ण होने से ऋ बारह का बोधक हुआ यह 'अणुदित्स०' का बाधक है ।

वृद्धिरा० । आत् और ऐच् वृद्धि संज्ञक हों । ऐच् में भत्वात् कुत्वाभाव हो गया ।

अदेङ्० । अत् एङ् गुण संज्ञक हों ।

भूवाद०। भूश्च वाश्च भूवौ। आदिश्च आदिश्च=आदि एक शेषः एक आदि प्रभृति का वाचक है उसको भू के साथ जोड़ दिया तो भू आदि दूसरा सादृश्य वाचक है उसको वा धातु के साथ जोड़ दिया तो वादि हुआ। अतः भू प्रभृति वा सदृश शब्द स्वरूप धातु संज्ञक हों। सादृश्यं च क्रिया वाचकत्वेन अर्थात् वा यह क्रिया वाचक है। इस वास्ते वृत्ति में क्रि या वाचक कहा:—

वि०—गुरु जी सूत्र में भू ग्रहण क्यों किया।

गु०—यदि भू ग्रहण नहीं करेंगे तो हिरुक् पृथक् की भी धातु संज्ञा हो जायगी।

वि०—तो अच्छा फिर भू ही ग्रहण कर लेगें 'वा, नहीं करेंगे।

गु०—यदि वा ग्रहण नहीं करोगे तो या पश्यसि में या की धातु संज्ञा हो जायगी।

प्राग्रीश्व०—ईश्वरघटितसूत्रमभिव्याप्य प्राक् निपाता इति पदद्वयं अधि क्रियते।

चादयो०—सत्वं द्रव्यं तद्भिन्नमद्रव्यम् जिसमें लिङ्ग संख्या का अन्वय हो वह द्रव्य तद्भिन्नं अद्रव्यम्। अर्थात् अव्यय पठित चादि निपात संज्ञक हों।

प्रादय०—प्रादि भी निपात संज्ञक हों।

उपसर्गा० गति०—प्रादि क्रिया के योग में प्रथम निपात संज्ञक होकर उपसर्ग और गति संज्ञक हों।

नवेति०—शास्त्रे शब्दाः शब्दपराः लोके शब्दा अर्थ पराः। इस भाष्य से न और वा विभाषा संज्ञक हों यह अर्थ पाया था

इस वास्ते आचार्य ने "इति" शब्द अर्थ का पर्याय वाचक दिया है तो यह अर्थ हुआ न इति वा इति अर्थात् निषेध और विकल्प विभाषा संज्ञक हों।

वि०—गुरु जी विभाषा कै प्रकार की होती हैं।

गु०—बेटा विभाषा तीन प्रकार की हैं एक तो प्राप्त विभाषा दूसरे अप्राप्त विभाषा तीसरे प्राप्ताप्राप्त विभाषा 'विभाषा ङि श्योः' में प्राप्त विभाषा है क्योंकि यहां पर 'अल्लोपोऽनः' करके अन् के अकार का लोप प्राप्त था इस सूत्र ने प्राप्त में विभाषा की है। 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' में अप्राप्त विभाषा है। क्योंकि यहां पर क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव किसी सूत्र से प्राप्त नहीं था इस सूत्र करके विकल्प से प्राप्त हुआ है अतः यह अप्राप्त विभाषा है 'विभाषा श्वेः' में प्राप्ताप्राप्त विभाषा है यह सूत्र प्राप्ताप्राप्त में ही लगता है।

स्वं रूपं०—'अग्नेर्ढक्' यहां अग्निवाचक से ढक् हो यह अर्थ होकर वन्हि शब्द से भी ढक् होना चाहिये इस वास्ते कहते हैं 'स्वंरूपं इति शब्द का स्वरूप संज्ञि होता है अर्थात् शब्द अपने ही रूप का बोधक होता है 'अग्नेर्ढक्' में अग्नि शब्द (अ ग् न् इ) एतदानुपूर्विक का बोधक होता है पर्याय का नहीं। अच्छा तो वृद्धि-रेचि' में वृद्धि शब्द अपने रूप का बोधक हो जायगा और कृष्ण एकत्वम् यहां अ ए को वृद्धि आदेश होकर कृष्ण वृद्धि कत्वं होना चाहिये इस वास्ते कहते है शब्द शास्त्रे० शब्द शास्त्रमें (व्याकरण) में जो संज्ञा है उसे छोड़ कर।

येन विधिरिति०—येन यह करणमें तृतीया है (करणं चाप्रधानम्) अप्रधानंच विशेषणम्। यत्र विशेषणं तत्र विशेषस्याध्याहारः

विशेषण तदन्त का बोधक हो अर्थात् विशेषणके आगे तदादि तदन्त जोड़ दो और स्वरूप का भी बोधक हो जैसे 'जरायाः जरस्यान्यतरस्याम्' यहां जरा विशेषण अङ्ग विशेष्य इस वास्ते जरा के आगे तदन्त लगादो जरा शब्दान्त अङ्ग को जरस् आदेश हो।

समास०। समास और प्रत्यय विधि में निषेध कहना जैसे द्वितीया श्रिता ती० यहाँ पर तदन्त नहीं होगा अतः कष्टं परमश्रितः में समास न होगा और 'नड़ादिभ्यः फक्' से सूत्र नाडमें फक् न होगा।

उगिद्वर्ण०—यह वार्त्तिक ऊपर के वार्त्तिक का निषेध करता है अर्थात् उगित् और वर्ण ग्रहणमें तदन्त विधि होजाती है। जैसे 'उगितश्च' 'एरच्' इत्यादि।

विराम०। वर्णों का अभाव अवसान संज्ञक हो।

परः सन्नि० वर्णों की अत्यन्त सन्निधि संहिता संज्ञक हो। अर्धमात्रातिरिक्तकाल व्यवायेन रहितः। आधी मात्रा से अधिक व्यवधान नहीं होना चाहिये।

सुप्तिङ०। सुबन्त और तिङन्त पद संज्ञक हो। प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तदन्त विधि हो जाती फिर अन्त ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है। संज्ञा विधौ प्रत्यय ग्रहणे तदन्त ग्रहणं नास्ति कि संज्ञा विधि में प्रत्यय ग्रहण में तदन्त ग्रहण नहीं होता। हलोऽन०। न अन्तरो येषां ते अनन्तराः हल् संयोग संज्ञक होते हैं कैसे हल् 'अनन्तराः, जिन्होंमें व्यवधान न हो। व्यवधान स्वजातीय का नहीं होता है किन्तु विजातीय का होता है तो हलों के विजातीय स्वर होते हैं इस वास्ते अज्भिः यह फलित हुआ। अचों से रहित हल् संयोग संज्ञक हों। अज्भिः यहां 'चोः कुः' से

ह्रस्व नहीं होता है क्योंकि अग्भिः करने में सन्देह हो जाता है कि कहीं अक् तो नहीं लिये जाते हैं अतः स्पष्टार्थ के वास्ते है।

ह्रस्वं०। ह्रस्व लघु संज्ञक हों। संयोगे०। संयोग परे रहते ह्रस्व भी गुरु संज्ञक हो। दी०। दीर्घ भी गुरु संज्ञक हो।

इति संज्ञा प्रकरणम्

सन्धि कार्य का उपयोगी संज्ञा प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ परिभाषा प्रकरणम्

वि०—गुरु जी, परिभाषा सूत्र कहां लगते हैं।

गु०—बेटा यह वहां लगते हैं जहाँ साक्षात् स्थानी नहीं हो और जहां अनुवृत्ति नहीं आती हो।

इको गु०—इकः यह षष्ठ्यन्तका अनुकरण लुप्त प्रथमा है। इस वास्ते सु परे न होने के कारण अतो सन्तस्य० करके दीर्घ नहीं हुआ यहाँ गुण वृद्धि की आवृत्ति करना और एक को "अर्थवशाद्विभक्ते र्विपरिणामः" इससे तृतीयान्त बना लेना। अर्थ—गुण + वृद्धि शब्दाभ्यां यत्र शास्त्रे गुणवृद्धी विधायके प्रयोजके पदे वर्तेते तत्र इक इति षष्ठ्यन्तं पदंमुपतिष्ठते। यथा०—'सार्व धातु०' मृजेर्वृद्धि रित्यादिकों में इक् की उपस्थिति हो गई।

अचश्च। ऊकालो० सूत्र से ह्रस्वादि की अनुवृत्ति करके उसे तृतीयान्त बनालो। ह्रस्व दीर्घ प्लुत शब्दों से जहां अच् को कार्य किया जाय वहां 'अच्' इस षष्ठ्यन्त पद की उपस्थिति करना। यथाः—'ह्रस्वोनपुं०' 'शमा म०' 'दूराद्धूते च' इत्यादि।

आद्यन्तौ० । टश्च कृच टकौ । टकौ इतौ ययो स्तौ । 'टित्' का आदि में अन्वय और कित् का अन्त में अन्वय करना । फिर तो सामर्थ्य नहीं होने से समास नहीं होना चाहिये 'सौत्रत्वात् समासः अथवा समुदाय टकितौ का समुदाय आद्यन्तौ में अन्वय करने से समास हो गया । ङणोकुक्० इत्यादि में 'षष्ठी स्थाने' से स्थाने की उपस्थिति होकर ङ्ण् के स्थान में कुक् टुक् आदेश हो यह अर्थ प्राप्त था इस वास्ते उसका यह बाधक हो गया ।

मिदचो० अच् यह निर्धारण में षष्ठी है । इ सवास्ते अचां मध्ये यह अर्थ हो गया । अचों के मध्य में जो अन्त अच् उससे परे उसी का अन्ताऽवयव मित् हो 'षष्ठी स्थाने' प्रत्ययः—परश्च इन्हों का बाधक है । मुग्धतिमें फलाभावात् अन्तावयव नहीं करना । 'षष्ठी स्थाने' स्थानेन योगोऽस्या इति । षष्ठी स्थान शब्द के साथ योग करती है । कौन षष्ठी ? 'अनियमे नियम कारिणी परिभाषा' अनियम में नियम करने वाली परिभाषा होती है—इस वास्ते । अनिर्धारित सम्बन्ध० यह फलित हुआ । अर्थात् जिसका कोई सम्बन्ध निर्धारण नहीं किया ऐसी षष्ठी स्थान में जानना । 'ऊदुपधाया गोहः' यहां 'उपधायाः' यह निर्धारित है—इस वास्ते परिभाषा नहीं लगेगी । 'इकोयणचि' इत्यादि में प्रवृत होगी । स्थानं च प्रसंगः—'स्थान से प्रसंग लेना जैसे 'दर्भाणां स्थाने शरैः प्रस्तरितव्यम्' दर्भों के अभाव में शरों का प्रयोग मीमाँसा कार ने लिखा है, इसी प्रकार से व्याकरण में भी स्थान शब्दका प्रसंग अर्थ है । इसी से वैयाकरणों के यहां शब्द अनित्य नहीं है 'इकोयणचि' का इक के उच्चारण प्रसङ्ग में यण् का उच्चारण करना यह अर्थ है । इससे शब्द नित्य हैं ।

स्थानेऽन्त० अनेक वर्णों की प्राप्ति रहते सदृशतम, आदेश हो। इससूत्रमें षष्ठी स्थाने० से स्थाने की अनुवृत्ति आजायगी फिर स्थाने ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है। यत्रानेक वि० जहाँ अनेक प्रकार का सादृश्य हो वहां स्थान कृत सादृश्य बलवान होता है। चेता यहां चिता इस लुट् में सार्वधा० से प्रमाण कृत सादृश्य मान कर इ–एक मात्रिक है तो अ भी एक मात्रिक गुण पाया इस वास्ते इस परिभाषा ने स्थान कृत (तालु स्थानकृत) सादृश्य मान कर इ का ए गुण कर दिया।

स्थानेऽन्त०। इसमें तमपू ग्रहण क्यों किया। अनेक वर्णों की प्राप्ति रहते (अन्तर) सादृश्य आदेश हो। ऐसा करने से कार्य चल जाता। पुनः तमप् ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि चार प्रकार का सादृश्य होता है १ स्थानकृत, २ प्रयत्नकृत, ३ अर्थकृत, ४ प्रमाण कृत। क्रम से उदाहरण–दध्यत्र यहां तालु स्थानी इ-का-य होगया। वाग्धरिः ह का घ। शृगाल वाचक क्रोष्टुः को शृगाल वाचक क्रोष्टृ। अमू में अदसोसेः० से ह्रस्व का ह्रस्वदीर्घ का दीर्घ।

वि०—आदेः परस्य में पर ग्रहण नहीं करेंगे तस्मादि० के साथ मिला देंगे। 'तस्मादित्युत्तरस्यादेः' ऐसा करेंगे। और पञ्चम्यन्त निर्देश करके क्रियमाण कार्य पर के आदि को हो ऐसा अर्थ करने से कार्य चल जायगा फिर पृथक् सूत्र क्यों किया।

गु०—पर ग्रहण न करने पर अष्टन् शब्द से जस् (अष्टन आ विभक्तौ) से आ–किया अष्टा जस् अब यहां 'अष्टाभ्य औश्' अष्टन् से परे जस् शस् को औश् हो। इससे जस् को औश् पाया

ता किस को हो 'अलोऽन्त्य० करके अन्त्य स् को औश् पावा इसको बाध कर अनेकाल० करके सारे जस् को पाया और आदे-परस्य० करके आदि ज को पाया तब विप्रतिषेधे० से परत्वात् आदेः पर स्यको बाध कर अनेकाल्० से सारे जस् को औश् होकर और वृद्धि होकर अष्टौ बनता है। अब तस्मादित्युत्तर स्यादेः सूत्र करने पर ,परत्वात् अनेकाल० सूत्र आदेःपरस्य को नहीं बाधेगा क्योंकि तस्मादि० ६० का है और अनेकाल० ५५ का है तो परत्वात् तस्मादि० हुआ करेगा। अतः अष्टौ सिद्ध न होगा इस वास्ते पर ग्रहण और पृथक् सूत्र करना आवश्यक है।

वि०—हम तस्मादित्युत्तरस्यादेः को अनेकाल्० से पूर्व पढ़ेंगे तब तो दोष न होगा।

गु०—मिला कर पूर्व पढ़ने में भी दोष होगा क्योंकि तस्मादित्यु० आगम विषयक भी प्रवृत्त होता है आदेःपरस्य आगम में लगता नहीं है। साथ में पढ़ने पर 'आदेः' यह अंश आगम में भी लगेगा—जैसे 'आज्जसेरसुक्' यह देवासः में असुक् आगम करता है तो यह असुक् स् के अन्त में होता है देवास् असुक फिर 'उकावितो' देवास् अस् देवासः ऐसा बनता है अब आदेः अंश से स के आदि में होगा तो रूप अनिष्ट होगा इस वास्ते पृथक् किया है।

आचार्य ने अधिकार सूत्रों पर स्वरित का चिन्ह किया है जैसे अङ्गस्य ॐ अतः उसी प्रतिज्ञा को कहते हैं।

स्वरितेo—स्वरित प्रतिज्ञा वाला अधिकार जानना इस अर्थ में स्वरितेन तृतीयान्त है। कहां तक अधिकार जाय इस ज्ञान के वास्ते जहां तक जाता है वहां पर भी स्वरित चिन्ह किया है। तब

स्वरिते सप्तमी। न अव्यय। अधिकारः प्रथमा। तो अर्थ हुआ स्वरिते दृष्टे अधिकारो निवर्तते।

अष्टाभ्यः औश् इत्यादौ आदेः परस्य इत्येतदपि परत्वात्० यहां पर परत्वात् आया है तो यह बात सिद्ध हो गई कि पूर्व से पर बलवान् है अब पर से कौन बलवान् इसको कहते हैं। पर नित्या०।

अब शंका हुई है कि अन्तरङ्ग क्या, इस वास्ते कहते हैं।

असिद्धं ब०। क्या यह सर्वत्र लगता है। नहीं। क्योंकि इसकी बाधिका अकृतव्यू० है। इस वास्ते तीन परिभाषा यहां लिखी हैं।

इति परिभाषा प्रकरणम्।

अथ अच् सन्धि

इको यणचि—इसमें इकः यह अनिर्धारित सम्बन्ध विशेषा षष्ठी है क्योंकि इक् का किसी के साथ सम्बन्ध नहीं है जैसे 'क्ष्णो कुक् टुक् शरि' में 'आद्यन्तौ टकितौ' इस सूत्र से क्ष्ण् के साथ कुक् टुक् का अन्तावयव सम्बन्ध निर्धारित किया है वैसा यहां नहीं है इस वास्ते 'षष्ठी स्थाने योगा की उपस्थिति होने से स्थान पद की उपलब्धि हो गई और अचि यह औपश्लेषिकी सप्तमी है संहितायां का अधिकार है तो क्या अर्थ हुआ कि:- अजुपश्लिष्टस्य इकः स्थाने यण स्यादचि संहितायां विषय भूतायाम् अच् के समीप में इक् के स्थान में यण् हो संहिता का विषय होने पर अब सुधी उपास्यः यहां पर परः सन्नि कर्षः इससे ध में

ई की और उपास्य के उ की संहिता है स में उ की ध में ई की संहिता संज्ञा नहीं है क्यों 'अर्ध मात्रातिरिक्त काल व्यवायाऽभावः संहिता अर्ध मात्र से 'अतिरिक्त के ध्यवधान में संहिता संज्ञा नहीं होती है यह भाष्य है। और एक वर्ण उच्चारण करने के बाद जब दूसरे वर्ण का उच्चारण करते है तब मध्य में अर्धमात्रा उच्चारण की मुख में रहती है अन्यथा वर्णों का उच्चारण हो नहीं हो सकता अतएव सुधी उपास्य में सकार वृत्ति उकार के उच्चारणानन्तर जब धी का उच्चारण करते हैं तब अर्ध मात्रा तो उच्चारण की मुख में रही और आधी मात्रा ध की है इस वास्ते एक मात्रा का मध्य में व्यवधान हो गया और उपास्य के उ का तथा प में आ का उच्चारण करते हैं तब भी एक मात्रा का व्यवधान हो जाता है इस वास्ते संहिता संज्ञा नहीं होती है केवल ध में ई की और उपास्य के उ की ही संहिता संज्ञा है। जब सुधी उपास्यः में इको यणचि लगावेंगे तो उ को अच् मान कर ई को यण् पाया और ई को अच् मानकर उ को यण् पाया तो किस को यण् करें पूर्व को अथवा पर को तो अनियमे नियम कारिणी भाषा अनियम में नियम करने वाली परिभाषा होती है तब इकोयणचि इस सूत्र में तस्मिन्निति० इस परिभाषा की उपस्थिती करना। और यह परिभाषा नियम करती है 'पूर्वस्य परस्य च कार्ये प्राप्ते पूर्वस्यैव 'व्यवहिते अव्यवहिते च कार्ये प्राप्ते अव्यवहितस्यैव। यहां अव्यवहितांश की उपस्थिती नहीं करना किन्तु पूर्वांश की उपस्थिती करना तो 'इको यणचि सूत्र का क्या अर्थ हुआ कि 'पूर्वस्य इकः स्थाने यण् स्यादचि परे संहितायां विषय भूतायाम्। पूर्व इक् के स्नथा

में यण् हो अच् परे रहते संहिता के विषय में अव्यवहितांश का फल उन सूत्रों में है जहां संहिता का अधिकार नहीं है जैसे 'सार्व धातुकार्ध धातुकयोः, इत्यादि ।

वि०—यह अर्थ करने पर भी तो दध्यानय में तो यण् हो जायगा परन्तु सुधी + उपास्यः यहां नहीं होना चाहिये क्योंकि "इको यणचि में ह्रस्व इकार है और सुधी में दीर्घ ईकार है।

गु०—बेटे यहां अणुदित्स० सूत्र लगाने से ह्रस्व इकार से दीर्घ ईकार भी लिया जाता है ।

वि०—अच्छा गुरु जी ह्रस्व इकार से तो दीर्घ ईकार का ग्रहण हो जायगा परन्तु ह्रस्व उकारादिकों से दीर्घ ऊकारादिकों का ग्रहण नहीं होना चाहिये क्योंकि 'उच्चारित एव शब्द प्रत्ययायको भवति नानुच्चारित इति अणुदित्सूत्र भाष्यात्" उच्चारण किया हुवा शब्द ही प्रत्ययायक होता है अर्थात् इकार ही साक्षात् पठित होने से दीर्घ ईकार का निश्चापक होगा उकार नहीं होगा तो वधू ईशः यहा यण् नहीं होना चाहिये ।

गुरु—"प्रत्याहारेषु तद् वाच्य वाच्येति निरूढा लक्षणा" प्रत्याहारों में तद्वाच्य + वाच्य में निरूढा लक्षणा होती है। प्रत्याहार कौन इक् तद् वाच्य कौन इ उ ऋ ऌ तद् वाच्य कौन दीर्घ ईकार दीर्घ ऊकारादि इनमें लक्षणा करलो ।

वि०—लक्षणा में क्या प्रमाण ।

गु०—"ल्वादिभ्यः" यह निर्देश ही प्रमाण है । क्योंकि यहां दीर्घ ऊकार को आचार्य ने यण् किया है यदि लक्षणा नहीं होती तो यण् कैसे करते इसी तात्पर्य को लेकर दीक्षित जी लिखते हैं ।

स्थान त आन्त० स्थान से सादृश्य होने से ईकार को यकार हुवा यदि इक् शब्द से ह्रस्व इकारादिकों का ही बोध होता तो यथा संख्य मनु० इस सूत्र करके चार इकों को चार यण् हो जाते परन्तु यहां इक् शब्द से ६६ वर्ण लिये जाते हैं और यण् से चार इसी वास्ते यथा संख्या भी नहीं हुवा।

वि०—लक्षणा से ही ह्रस्व स्वरों से दीर्घ स्वरों का भी बोध हो जायगा फिर अणु दित्सव० सूत्र क्यों किया।

गु०—लक्ष्यतावच्छेदक ज्ञान के वास्ते सूत्र है अर्थात् लक्षणा होती है इस बात का ज्ञापक है।

वि०—गुरु जी व्यक्ति पक्ष और जाति पक्ष भाष्यकार ने स्वाकार किये हैं तो हम यहां व्यक्ति पक्ष नहीं मानेंगे किन्तु जाति पक्ष ही मानेंगे तब तो इक् पद से यावत् इकारादिकों का बोध हो जायगा फिर अणुदित्सूत्र क्यों किया।

गु०—यह अणुदित्० सूत्र ही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि अविधीय मान में ही जाति पक्ष का आश्रय करना विधीय मान में नहीं करना।

अनचि च—इसमें न अच् अनच् तस्मिन् अनचि यह सौत्र-त्वात् समास है यदि सौत्रत्वात् समास नहीं करेंगे तो समास नहीं होगा क्योंकि अचि परे न स्यात् यह अर्थ होगा तब तो यहां सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि अचि का अन्वय परे के साथ है और न का अन्वय स्यात् क्रिया के साथ है इस वास्ते सौत्रत्वात् ही कहना उचित है। इस सूत्र में अनचि यह निषेध है और च विध्यर्थ है तो यह अर्थ हुआ अच् से परे यर् को द्वित्व हो विकल्प करके अच् परे रहते न हो। इससे धकार को द्वित्व हो गया।

वि०—द्वित्व होने पर फिर द्वित्व क्यों नहीं होता।

गु०—लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवर्तते। लक्ष्य में लक्षण एक ही बार लगता है बार २ नहीं। इसी वास्ते कहते हैं इति धकार-स्येति० इस करके धकार को द्वित्व होगया और जश्त्व निष्पन्न ध स्थानि वद्धकार को नहीं।

वि०—गुरु जी यहां तो अच् परे आगया फिर भी द्वित्व नहीं होना चाहिये।

गु०—अच् कहां है यहां तो य परे है।

वि०—हम स्थानिवद्भाव करेंगे।

गु०—किससे।

वि०—स्थानिवदा० आदेश स्थानि वृत्ति धर्म वाला हो। आदेश कौन यकार स्थानि कौन इकार तद्वृत्ति धर्म क्या अचत्व। वह अचत्व धर्म यकार में आजायगा इस वास्ते द्वित्व नहीं होना चाहिये।

गु०—तुमने आधा अर्थ किया है सम्पूर्ण नहीं इस सूत्र में अनल्विधौ लिखा है आदेश का स्थानि भूति जो अल् तदाश्रय विधि कर्तव्य रहते आदेश स्थानिवत् न हो इस वास्ते यहां इकार अल् है तद् वृत्ति धर्म यकार में नहीं आवेगा तो निषेध भी नहीं होगा। अथवा आदेशस्य स्थानि भूतोऽल् स्थानि सम्बन्धि च योऽल् तद् वृत्तिरल् मात्र वृत्ति यों धर्म स्तद् घटित यो धर्मस्तद् धर्मावच्छिन्नो देश्यता के कार्ये कर्तव्ये आदेशो न स्थानिवत्। यह अर्थ करलो कार्य चल जायगा। इसी वास्ते दीक्षित कहता है कि—अनेनेह यकारस्येति० अनेन माने स्थानि वदादेशोऽन-ल्विधौ इस सूत्र से यकार को स्थानिवत् होने पर "अनचि" इस

द्वित्व निषेध की आशंका नहीं करना अनत्विधौ इस द्वितीय वाक्य द्वारा निषेध होने सेः—

नोट—जब सूत्र में निषेध और विधि वाक्य एक साथ पड़े हैं तो यह शंका और समाधान करने अयुक्त हैं दूसरे अनचिचेति द्वित्व निषेधो इसमें च भी साथ में लिख दिया यह और भी महान् अनर्थ हैक योंकि "अनचि" यह निषेध वाक्य है इसीको लिखना उचित है "च" का लिखना सर्वथा अनुचित है क्योंकि "च" तो सूत्र में विध्यर्थ है मेरी सम्मति में यह पंक्ति इस तात्पर्य को लेकर लिखी है कि "अनत्विधौ" में अलः परस्य विधिः अल्विधिः न अल्विधिः अनत्विधिः तस्यात् अनत्विधौ यह पंचमी समास मानेंगे तब सुध्य् उपास्यः में निषेध नहीं होगा क्योंकि यहां अल् से पर विधिः नहीं है किन्तु पूर्व को विधि है इस वास्ते कहते हैं "अनेनेह यकारस्य०" अत्र सूत्रे अनल इति पंचम्यन्तमेव पठनीयम् विधि ग्रहणं व्यर्थं सज्ज्ञापयति अत्रअेला विधिः अलोविधिः अलोविधिः अलिविधिः इति समास चतुष्टयम् इत्याशयेनाह "अनत्विधाविति०" षष्ठी समासादिति भावः। अच्छा इससे न हो "अचः परस्मिन् पूर्व बिधौ" आदेश स्थानि वृत्ति धर्मवाला हो स्थानि भूत अच् से जहां पूर्वत्वेन जो दृष्टि है उसको जहां विधि कर्तव्य हो। इस करके स्थानिवद्भाव करेंगे इसी वास्ते कहते हैं अल्विध्यर्थमिदम् यह अल्विधि लगने के वास्ते सूत्र है क्योंकि अनत्विधौ निषेध प्रत्यक्षत्ति न्याय से स्थानि वदादेशों का ही करता है इसका नहीं। इस सूत्र में विधि ग्रहण क्यों किया क्योंकि पूर्वस्य कहने से ही विधि की उपलब्धि हो जायगी पुनः व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि यहां दो समास हैं पूर्वस्य विधिः पूर्वं

विधिः । पूर्वस्मात् विधिः पूर्व विधिः । पंचम्यन्त का फल आगे कहेंगे । इति स्थानि वत् भावे प्राप्ते । इति माने अनल्विधि यह निषेध न होने से स्थानिवद्भाव प्राप्त रहा तब सूत्र लगा ।

"न पदान्त०" "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभि सम्बध्यते" इससे विधि का सबके साथ सम्बन्ध है । पद के अन्तावयव विधि कर्तव्य रहते द्विर्वचन विधि वर् परे लोप विधि यलोप विधि स्वर विधि सवर्ण विधि अनुस्वार विधि जश् विधि चर विधि यह विधि कर्तव्य रहते आदेश स्थानि वत् नहो । इति स्थानिवद्भाव निषेधः । इस करके पदान्त विधि होने से स्थानिवत् का निषेध हो गया । सुध् ध् य् उपास्यः, सुध्य् उपास्यः यह दो रूप बन गये । तब सूत्र लगा "झशां जश०" स्पष्टम् । इसका अर्थ सूत्र में स्पष्ट है, इति धकार स्येति० इस करके धकार का दकार होगया । प्रमाण कृत सादृश्य मानकर अर्ध मात्रिक धकार के स्थान में सम्पूर्ण जश् प्राप्त रहे । इस वास्ते कहते हैं इति धकार (स्ये० धकार) को दकार ही होता है "यत्रानेक विधमान्तर्य०" इस न्याय से । "अदर्शन मिति०" स्थाने की अनुवृत्ति करना और स्थान नाम है प्रसंग इस वास्ते प्रसक्त स्येति फलितम् । शास्त्र से अथवा अर्थ से विद्यमान का अदर्शन लोप संज्ञक हो । शास्त्र से लोप सुध्य् उ पास्य अर्थ से "प्रासादात्प्रेक्ष्यते" यहां अर्थ से अदर्शन है इस वास्ते प्रासादात् में "ल्यब् लोपे पंचमी" से पंचमी होगई । "संयोगान्तस्यः संयोगान्त जो पद उसका लोप हो सम्पूर्ण का लोप पा या । तब इस सूत्र में सूत्र लगा "अलोऽन्त्यस्य" इससे अन्त्य पद की उपस्थिति होगई, तब यह अर्थ हुआ संयोगान्त जो पद उसके अन्त्य का लोप हो इति य लोपे प्राप्ते इससे य् लोप पाया ।

"यणः प्रति०" यण् लोप का निषेध कहना। इससे निषेध हो गया। यदि "संयोगान्तः" में झल् की आनुवृत्ति करें तो यह अर्थ हो संयोगान्त झल् का लोप हो तब वार्त्तिक नहीं करना चाहिये। द्वित्व व्यवस्था को दिखाते हैं। "यणोमयो०" इसमें यणः यह षष्ठ्यन्त और पंचम्यन्त दोनों है। 'एवंमयः' यह भी षष्ठ्यन्त और पञ्चम्यन्त है। विनिगमना विरहात् प्रमाण का अभाव होने से। इस वास्ते यह अर्थ हुवा यण् से परे मय को द्वित्व हो और मय से परे यण् को द्वित्व हो इससे विकल्प सिद्ध होगया। विकल्प विधायकों में करने वाले की इच्छा है चाहे द्वित्व करे अथवा नहीं करे। अब दो ध् वाले में "यणोमयो से० ध को द्वित्व किया तो दो ध् दो य् हो गये दोनों नहीं लगाये तो एक ध् और एक य् हुवा और अनचिच लगा दिया "यणोमयो०" नहीं किया तो दो ध् एक य् हुवा और यणो मयो को लगा दिया अनचिच नहीं लगाया तब एक ध् दो य् हो गये। इस प्रकार चार रूप हो गये। विसर्गादि द्वित्व किये जांय तो अधिक रूप बन जांयगे परन्तु यहां मुख्य द्वित्व को ही आचार्य ने दिखाया है। इसी वास्ते कहते हैं "मय इति पंचमी०" मय को पंचमी मान कर और यण् को षष्ठी मान कर यकार को द्वित्व हो गया और अपी शब्द से धकार को भी "तदिह०" इस कारण से धकार यकार को द्वित्व विकल्प होने से चार रूप बन गये उसी को दिखाते हैं एक ध मेकयम् दोनों नहीं लगायेंगे तो द्विधं द्वियम् दोनों लगा दिये तो द्विधमेकयम्अनचिच लगाने से एक ध द्वियम् यण्-मय० लगाने से वि०—सुधी + उपास्यः यहां इको सवर्से० से ह्रस्व क्यों नहीं हुवा। गु०—न समासे इससे निषेध होगया।

वि०—अच्छा न भ् सुधियोः निषेध क्यों नहीं होता।

गु०—सुप् परे होने पर निषेध करता है अत् एक अंग होना चाहिये यहां दो हैं।

वि०—ध्यायते सम्प्रसारणांच से ध्यै धातु से धी बना है तो उपास्य के उ को सम्प्रसारणांच करके पूर्व रूप होना चाहिये।

गु०—सम्प्रसारण पूर्व रूपत्वे समानांग ग्रहणं कर्तव्यम्। सम्प्रसारण और पूर्व रूप कर्तव्य रहते समानांग का ग्रहण होता है इस वार्तिक से निषेध होगया।

"नादिन्या क्रोशे०"। यहां आद्रिनी यह ङ्यन्तानुकरण लुप्त सप्तमी है।

वि०—तब यहां इदूतौ च सप्तम्यर्थे से प्रकृति भाव हो जायगा और सन्धि भी नहीं होगी।

गु०—यहां सौत्रत्वात् सन्धि करलो अच् से परे पुत्र के अवयव यण् को द्वित्व हो आदिनी शब्द परे रहते और निन्दार्थ गम्यमान रहते इस प्रकार की निन्दा स्त्रियों में हीप्रायः पायी जाती है इस वास्ते स्त्री विषयक ही उदाहरण देते हैं पुत्र मंतु यथा सा पुत्रादिनी (अनचिचेत्यस्यापवादः) आक्रोशे किं आक्रोश क्यों कहा "यथार्थ कथने०" जहां यथार्थ ही कथन है निन्दा नहीं है वहां नहीं हो इस वास्ते किया है पुत्रादिनी सर्पणी वा वाघ्नी जिन्हों को धर्म शास्त्र प्रतिपादित धर्मों का ज्ञान हो वही निन्दा के पात्र हैं। तत्परे च यहां तच्छब्द पूर्व परामर्शक है इस वास्ते आदिनी शब्द लिया जायगा। स आदिनी शब्द परो यस्मात् असौ तत्परः तस्मिन्। वह आदिनी शब्द है परे जिससे ऐसा पुत्र शब्द परे रहते प्रथम पठित पुत्र शब्द के परम को द्वित्व हो।

"वाहतजग्धयोः" हत और जग्ध शब्द परे रहते पुत्र के अवयव यर् को विकल्प करके द्वित्व हो।

वि०–अनचिच इससे द्वित्व विकल्प हो जायगा फिर यह वार्त्तिक क्यों किया।

गु०–यह वार्त्तिक व्यर्थ होकर नियम करता है पुत्र शब्द के अवयव यर् को द्वित्व होय तो क्तान्त हत् जग्ध शब्द ही परे रहते हो अन्यत्र न हो पुत्र गतः इत्यादिकों में नहीं हुवा।

वि०–हम विपरीत नियम करेंगे हत जग्धयोः परयोः पुत्र शब्द स्यैव।

गु०–विपरीत नियम नहीं होता है

दुहित्र जग्ध इस भाष्योदाहरण से।

त्रिप्रभृतिषु०। तीन से आदि वर्ण जहां संयुक्त हो वहां अच् से परे यर को विकल्प से द्वित्व हो। यद्यपि इस सूत्र में न की अनुवृत्ति आती है, परन्तु निषेध विकल्प और विधि विकल्प में कुछ विशेष फल नहीं, इस वास्ते न की अनुवृत्ति नहीं की। इन्द्र इति यहां "नन्द्राः संयोगादयः" यह निषेध नहीं लगता है अनन्तर स्य विधिर्वा भवति प्रति षेधो वा इस न्याय से षष्ठि द्वित्व प्रकरणस्थ जो लिटि धातोरनभ्यासस्य द्वित्व है उसीका निषेध करता है।

सर्वत्र शा०। शाकल्य के मत में सर्वत्र अच् से परे यर् को द्वित्व हो। दीर्घादा०। आचार्यों के मत में सर्वत्र द्वित्व नहीं होता है। "अनचिच" सर्वत्र शाकल्यस्य इन्हों से कार्य सिद्ध हो जायगा फिर त्रि प्रभृति० दीर्घादाचा० यह दोनों सूत्र मत भेद प्रदर्शनीय हैं॥

अचोरहाभ्यां०। अच् से परे जो रेफ हकार तिन्होंसे परे यर् को द्वित्व हो विकल्प करके। हरि + अनुभवः अत्र यणि

कृते हर्य्यनुभवः। पुनस्तेन द्वित्वे हर्य्य्यनुभवः। पुनः हलो यमां० हल् से परे यम् का लोप हो हल् परे रहते विकल्प करके। इस करके द्वित्व यकार वालों में य का लोप हो गया इस वास्ते कहते हैं इति लोप पक्षे द्वित्वाऽभावपक्षे चैकेयं रूपं तुल्यम्। इससे लोप होगया उस पक्ष में और द्वित्वाऽभाव पक्ष में एकसा रूप हो गया फिर हलो यमां० सूत्र क्यों किया इस वास्ते कहते हैं। "लोपारम्भ इति" लोप का फल तो आदित्य शब्द से "दित्यादित्या०" इस सूत्र से ण्य प्रत्यय होने पर आदित्यय यहां अकार लोप करने पर "हलो यमां यमि०" से य लोप हो गया। लोप का फल माहात्म्यम में भी तो है फिर वहां दोष क्यों दिया इस वास्ते कहते यमां यमीति०। यमां यमि यहां यथा संख्य होने से लोप नहीं होता है। अर्थात य का य परे रहते लोप होता है। म का म परे रहते इस वास्ते यहां फल नहीं। शं०–यथा संख्य करने वाला सूत्र यहां लिखना चाहिये। उ०–भाष्यकार ने शत्रुं मित्रं कलत्रं च जय रज्जय भज्जय इस लौकिक न्याय से खण्डन कर दिया है इस वास्ते नहीं लिखा है।

"एचोयवा" एच् को क्रम से अय् अव् आय् आव् यह आदेश हों अच् परे रहते, यहां भी शत्रुं मित्रं कलत्रं च० इस न्याय से यथा संख्य कर लेना। अथवा सम्वृत। वर्णयोरेकारौ कारथो रयवौ आदेशौ ऐकारौ कारयो राया वादेशौ–अतो नास्ति यथा संख्य सूत्र स्यात्र प्रयोजनम्।

तस्य लोपः। उस इत्संज्ञक का लोप हो। हरेव इत्यादिकों में यकारादिकों की इत्संज्ञा होकर लोप होना चाहिये। इस वास्ते कहते हैं इति "यवयोर्लो०" इस करके य् व् का लोप नहीं होता है

उच्चारण० उच्चारण सामर्थ्य से। और इत्संज्ञा का फल है लोप इस वास्ते इत्संज्ञा भी नहीं होती है। वान्तोयि०। इस सूत्र में यि विशेषण है और प्रत्यये यह विशेष्य है तो "येन विधिस्तद०" से तदन्त विधि प्राप्त रही इस वास्ते इसका बाधा करने वाली परिभाषा है "यस्मिन् विधिस्तदादावल् ग्रहणे"। जहां अल् ग्रहण सप्तम्यन्त विशेषणी भूत हो वहां तदादि की उपस्थिति करना यहां "यि" यह अल् ग्रहण है इस वास्ते तदादि उपस्थित हुवा तो क्या अर्थ हुवा "यकारादि" यकारादि प्रत्यय परे रहते ओकार औकार को क्रम से अव् आव् आदेश हों। "इकोयण" "एचो यवा०" "वान्तोयि०" इनकी जगह इचोऽचि यण यवायावः वान्तोयि प्रत्यये ऐसा न्यास सुत्रव है। "गोर्यूतावितिः गो शब्द के ओकार को वान्त आदेश हो यूति शब्द परे रहते छन्द में। अध्व परि गो शब्द के ओकार को अवादेश हो भाषा में जहां मार्ग का परिमाण गम्य मान हो।

"गव्यूति" में वान्तोयि प्रत्यये इससे वान्त हो जायगा फिर वार्तिक क्यों किये। इस वास्ते कहते हैं ऊति यूति इत्यादिना० ऊति यूति इस सूत्र करके यूति शब्द निपातन से बना है प्रत्यय नहीं है।

वि०-गव्यम् नाव्यम् गव्यूति में प्रत्यय लक्षण से गव् को पद मानकर लोपः शाकल्यस्य अथवा हलि सर्वेषाम् इनसे लोप होना चाहिये। इस वास्ते कहते हैं। "वान्त इत्यत्रे०" वान्तोयि प्रत्यये इस सूत्र में वकार के पूर्व वकार का श्लेष करना और वह वकार लोपो व्योर्यलि से लोप कर देना तो क्या सूत्र का अर्थ हुआ यकारादि प्रत्यय परे रहते ववान्त आदेश हो अर्थात

वान्त वान्त ही रहे लोप नहीं हो इस वास्ते कहते हैं "तेन श्रूयमाण०" इससे श्रूयमाण ही वकार आदेश हो, वकार का लोप न हो। इससे गव्यम् नाव्यम् में लोप नहीं होगा और उसी व वान्त की अनुवृत्ति "गो यूतौ" में करके उसका भी यह अर्थ करना यूति शब्दे परे गोरोकारस्य वान्त वान्तएव, आदेशो भवति 'वकारो न लुप्यते इति' तेन गव्यूति रित्यत्रापि न वकारस्य लोप इति। गव्यम् नाव्यम् में यत्प्रत्यय परे होने पर पचिभं से भ संज्ञा हो जायगी; पदत्वाभाव होने से लोप नहीं होगा फिर वान्तोयि में प्रश्लेष क्यों किया ? कहो कि गव्यूति के वास्ते हैं कि वकार लोप न हो सो भी ठीक नहीं क्योंकि "वान्तोयि" में वकार का प्रश्लेष करना फिर ववान्त ऐसा अर्थ करना फिर उस वान्त की गोर्यूतौ में अनुवृत्ति करके उसका भी वही अर्थ करना कि यूति शब्द परे रहते गो शब्द को ववान्त आदेश हो इसमें गौरव होगा क्योंकि दोनों स्थानों पर अर्थ करना और गो र्यूतौ में अनुवृत्ति करना इससे गोर्यूतौ में छकार से पूर्व ही प्रश्लेष करना उचित है, यही ग्रन्थकार का तात्पर्य है।

वि०—गामिच्छति गव्यूति यहां पर यकार लोप न हो इस वास्ते वान्तोयि प्रत्यये में प्रश्लेष करना उचित है।

गु०—यहां भी लोप नहीं हो सक्ता क्योंकि यहां 'नक्ये' नियम कर देगा, कि क्यच्—क्यङ् परे रहते नान्त ही पद संज्ञक होता है अन्य नहीं, गव्यूति में नान्त नहीं है इस वास्ते पद संज्ञा न होगी तो लोप भी नहीं होगा। कोई यह कहता है कि वान्तोयि में भाष्यकार ने वान्त का प्रत्याख्यान किया है और "एचोयवायावः" की अनुवृत्ति करके यकारादि प्रत्यय परे रहते एच् को अय् अव्

आय् आव् आदेश हों इस वास्ते वान्त ग्रहण नहीं करना। कहो कि योग्यार्थं चेयम् जेयम में भी वान्त आदेश हो जायगा, तो यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि "क्षय्य नय्यौ शक्यार्थे" इसका योग विभाग करके 'क्षय्य जय्यौ एक योग, और 'शक्यार्थे द्वितीय योग, तो सब जगह "वान्तो यि०" से काम चल जायगा फिर यह सूत्र क्यों किया और योग विभाग क्यों किया। इस वास्ते नियमार्थ होंगे कि 'एचश्चेद् वान्त आदेशास्तर्हि क्षिय्यो रेव शक्यार्थे एव इस वास्ते जेयम् चेयम् में दोष नहीं होगा, कहो कि क्षय्यजय्यौ एकारांश विषय में नियम करेगा ऐकारांश में नहीं तो रायमिच्छति रैयति यहां भी "यि प्रत्यये" से यान्तादेश हो जायगा सो भी ठीक नहीं क्योंकि रैयति यह छान्दस प्रयोग है इस वास्ते छन्दस्सि दृष्टानुविधि वेद में जैसा देखा जाता है वैसा ही रहता है; इस वास्ते रैयति में यान्त देश नहीं होगा, फिर वान्त ग्रहण नहीं करना, तो वान्त में प्रश्लेष करना भी अनुचित है, इस वास्ते धकाराद्धा भूज में कहाहै—यह बात ग्रन्थकार भी जानते थे; कि वान्त का भाष्यकार ने खण्डन किया है इस वास्ते वान्त ग्रहण का खण्डन छकार से पूर्व प्रश्लेष करने में ग्रन्थकार का तात्पर्य नहीं है।

वि०—कोई यह भी कहता है कि लोपोव्योर्वलि में वकार का भाष्यकार ने खण्डन किया है तो ववान्त में व का लोप कैसे होगा।

गु०—यह खण्डन लौकिकोदाहरणाभाव परक है शास्त्रीय प्रयोग में तो करना ही पड़ता है। गव्यूति छान्दस प्रयोग में छन्दसि दृष्टानु विधिर्भवति इस नियम से लोप नहीं होगा और लौकिक गव्यूति में संज्ञा भंग भयात् व लोपो नास्ति, इस न्याय से नहीं होगा पुनः छकार से पूर्व प्रश्लेष करना भी व्यर्थ ही है॥

नोट–कोई ववान्त प्रश्लेष में यह शंका करता है कि यहां वकार लोप नहीं होना चाहिये क्योंकि "कार्य्यमनुभवन्हि कार्यी निमित्तत्वेनाश्रियते" कार्य का व लोप का अनुभव कराने वाला जो वान्त कार्यी है वह केवल निमित्त नहीं माना जा सकता इस वास्ते लोप नहीं होना चाहिये। उत्तर—यह परिभाषा यहां नहीं लगती है क्योंकि कार्य व लोप है और निमित्त वान्त का व है इस वास्ते कार्य्य और कार्य्यी में भेद है जहां निमित्त और निमितक एक हो वहां यह परिभाषा प्रवर्त होती है। जैसे:–सत्प्रत्यय क्तोतिमि ल मानकर सन् को ही द्वित्व करें तो निमित्त और निमितक एक होजायं तब द्वित्व नहीं होता है और सन् को मान कर धातु के वर्ण को द्वित्व करें तो यह परिभाषा नहीं लगती है इसी प्रकार ववान्त यहां पर भी नहीं लग सकती है क्योंकि जिस वकार का लोप करते हैं उस वकार में और जिस को निमित्त मानते हैं उस वकार में भेद है कार्य्य और कार्य्यी एक नहीं इस वास्ते लोपोव्योर्वलि से वकार का लोप हो ही जायगा।

धातोस्तन्निमित्तमितस्यैवेति– यादि प्रत्यय परे रहते यादि प्रत्ययनिमितक धातु के एच को वान्तादेश हो। लू धातोर्यत्प्रत्यये, गुणे च लोपामिति रूपम्–एवमवश्यं पूर्वकाद् लू धातो एयत्प्रत्यये वृद्धौ च अवश्यं लौयम् (लुपेदवश्यमः कृते इति भकारस्य लोपे अवश्य लौयम्–उभपत्र अनेन वान्तादेशे सिद्धं रूपम्। शंका-यहां तो वान्तोपि प्रत्यये से वान्तादेश हो जायगा। फिर धातोस्तन्निमित्तस्यैव, यह सूत्र क्यों किया इस वास्ते कहते हैं–तन्निमितस्यैवेतिकिम्? अवयव द्वारा समुदायस्य प्रश्न– अवयव द्वारा समुदाय में प्रश्न है–अर्थात् सूत्र क्यों किया तो व्यर्थ हुवा–व्यर्थ होकर

नियम करता है कि-यादौ प्रत्यये परे धातोरेचश्चेद्वान्तादेश स्तर्हि तन्निमित्तिस्यै नान्यस्पेति-

यादिप्रत्यय परे रहने धातु के एच् को वान्तादेश हो तो "यादि प्रत्यय निमित्त कस्यैव" अर्थात् यादि प्रत्यय को मान कर हुआ हो ऐसे एच् को वान्तादेश हो अन्य को नहीं हो। नियम के फल को दिखाते हैं-ओ यंत इति आङ पूर्वक वेञ् धातोः कर्मणि लट्टि-तादेश-सार्वधातुके यक् इति यकि वेयत "आदेच उपदेशे" इति आत्वे वायात वचिस्व० इति वकारस्य सम्पूसारणे "सम्प्रसारणाचेति" पूर्व रूपे आउयत टेरे त्वे-आद्गुणः ओयते इति रूपम्, यहां यकार को मानकर ओकार नहीं हुआ किन्तु आद्गुणः से गुण हुआ है इस वास्ते यहां वान्तादेश नहीं हुआ। शंका ओयते यहां तो दोष नहीं क्योंकि गुण पदद्वय सम्बन्धि वर्णद्वय की अपेक्षा करता है इस वास्ते असिद्धं बहिरंग मन्तरंगे। अन्तरंगे कर्ये कर्तव्ये बहिरंग मसिद्धं स्यात्-इस वास्ते वान्तोयि की दृष्टि में आद्गुणः कृत जो गुण है वह असिद्ध हो जायगा-फिर सूत्र क्यों किया ? इस वास्ते द्वितीय फल देते हैं-औयत इति अत्रपि पूर्ववत् वेञ धात्तो र्लङि आटि यकि सम्प्रसारणे औयत इति रूपम् यहां यादि प्रत्यय निमित्तक एच् नहीं है इस वास्ते सूत्र नहीं करते तो वहां भी वान्तादेश होजाता; इस वास्ते सूत्र किया है। "शक्य जय्यौ" शक्ये अर्थ में शक्य जय्य यह निपातन से होते हैं अर्थात् यान्तादेश निपातन से होता है।

यहां तो "धातो स्तन्नि तस्यैव" से होजाता वार्तिक क्यों किया ?

उ०-धातो स्तन्नि० वान्ता देश करता है यहां यान्ता देश होता है। शक्यार्थे कि० शक्य मेंअर्थ क्यों कहा ?

उ०—क्षेतुं योग्यं क्षेयम्—पापं जेतुं योग्यं जेयं मनः यहां न हो इस वास्ते किया है ॥ "क्रय्यस्तदर्थे" तस्मै प्रकृत्यथायेदं तदर्थं तस्मिन् तदर्थे । धातु के अर्थ में क्रय्य रूप निपातन से होता है । क्रीम् धातोः यत् प्रत्यये गुणे च रूपम् । खरीदने वाले खरीदें इस बुद्धि से बाजार में फैलाया हुआ जो द्रव्य है वही क्रय्यम् कहाता है । जहां कालान्तर में बेचने को है अथवा अपने कार्यार्थ विद्यमान है वहां क्रेयम् बनता है ।

अवादेशादि प्रसंग में वकारादिकों का लोप भी हो जाता है इस वास्ते कहते हैं ॥ "लोपः शा०" अवर्ण है पूर्व में जिसके ऐसे पदान्त यकार वकार का लोप हो विकल्प करके, अश् परे रहते । लोप पक्ष में आद्गुणः से गुण होकर सन्धि क्यों नहीं होती है इस बात को कहते हैं "पूर्वत्रासि०" इस करके आद्गुणः की दृष्टि में लोपः शाक० असिद्ध है इस वास्ते सन्धि नहीं होती ।

शास्त्र में दो पक्ष होते हैं "पद संस्कार पक्षः" और "वाक्य संस्कार पक्षः" परस्पर निरपेक्षाणि पदानि संस्क्रियन्ते यत्रासौ पद संस्कार पक्षः आपस में अपेक्षा रहित जहां पदों का संस्कार किया जाय वह पद संस्कार पक्ष अर्थात् पृथक् २ पद सिद्ध किये जांय उसे पद संस्कार पक्ष कहते हैं । इसी प्रकार वाक्यात् सुप् तिङ् चय रूपादुधृत्यपदानि संस्क्रियन्ते यत्रासौ वाक्य संस्कार पक्षः । सुप् तिङ् रूप वाक्य निकाल कर पदों का जहां संस्कार किया जावे उसे वाक्य संस्कार पक्ष कहते हैं अर्थात् कई एक पद जहां मिलाकर सिद्ध किये जांय उसे वाक्य संस्कार पक्ष कहते हैं । अब पद संस्कार पक्ष में यह पंक्ति नहीं है क्योंकि जिस वक्त कानि सिद्ध किया उस समय सन्ति का आकार नहीं है क्योंकि

पृथक् लोप करके फिर कानि के साथ जोड़ा है। जिस समय कानि के साथ सन्ति को जोड़ते हैं उस समय सन्ति के आकार का लोप नहीं हुआ है तो "अचः परस्मिन् नहीं लग सकता क्योंकि पद कौन भि उसे मानकर अजादेश क्या श्नसोरल्लोपः करके अकार का लोप उससे पूर्वत्वेन दृष्ट विधि किसको है ? कानि के इकार को; सो तो इकार अलोप अवस्था में है ही नहीं फिर पूर्वत्वेन दृष्ट विधि नहीं है इस वास्ते यण् भी नहीं होगा फिर यह शंका और समाधान निष्फल है। इसलिये पद संस्कार में यह नहीं है—वाक्य संस्कार पक्ष में है। क्योंकि वाक्य संस्कार में किम् जस् अस् भि ऐसी अवस्था में किमः की देशे जसः शी, नुमि, दीर्घे च, कानि इति रूपम्। असभि श्नसोरल्लोपः इति अकारस्य लोपे "झोन्त" इति झय अन्ता देशे सन्ति इति रूपम्। इदानीश्च कानि सन्ति इति प्रयोगे अचः परस्मिन्निति अकार लोपस्य स्थानि वत्वेन यणि प्राप्ते। क्योंकि पर कौन भि उसको मान अजादेश क्या, अलोप उससे पूर्वत्वेन दृष्ट विधि क्या है कानि के इकार को यण् इस वास्ते अलोप स्थानिवत् हो जायगा, तो यण् होना चाहिये, इसी प्रकार किम् औ अस्तस् यहां पर भी किमः कादेशे असोऽकारस्य लोपे सकारस्य विसर्गे च स्त इति रूपम् क-औ वृद्धौ-कौ इति रूपम्। सहैव साध्यते तदा अत्रापि अलोपस्य स्थानि वत्वेन एचोऽयवायावः इति औकारस्य आवादेशे प्राप्ते इत्याशयेनाह "कानि सन्ति कौस्त" कानि सन्ति कौस्तः यहां पर अलोप को स्थानिवत् होने से यण् आवादेश प्राप्त रहे इस वास्ते कहते हैं। "नपदान्तेति०" इस सूत्र करके स्थानि वद्भाव का निषेध होगया क्योंकि यहा पदों का अन्तावयव विधि कर्त्तव्य है। शा० अच्छा

हम वाक्य संस्कार पक्ष में भी प्रथम 'कानि, को सिद्ध नहीं करेंगे 'सन्ति, को साधेंगे। तब भी तो अलोप अवस्था में कानि,का इकार न होने से पूर्वत्वेन दृष्टविधि नहीं होगी तो यण् पावेगा ही नहीं ङ० प्रथमोपस्थितिकत्वेन अन्तरङ्गत्वात् पूर्वं कानि इत्यस्य सिद्धिः पश्चात् सन्ति'एकः पूर्व परयोः,। पूर्वश्च परश्च तयोः पूर्व परयोः स्थाने एकादेशो भवति इत्यर्थः।इत्यधिकृत्य। इसका अधिकार करके स्वस्मिन् फल शून्यत्वे सति उत्तरोत्तरैकवाक्यतयाफलनिष्पादकत्व मधिकारत्वम्। पूर्व परयोः इस षष्ठ यन्त पद को देख कर आदेः परस्य, और 'अलोऽन्त्यस्य' इन दोनों सूत्रों की उपस्थिति होगी इस वास्ते पूर्व के अन्तावयव को और पर के आद्यावयव को कार्य करना सब स्थानों पर।

आद्गुणः-अवर्ण से अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में एक गुणादेश हो। 'आत्, यह पञ्चम्यन्त है इस वास्ते विभक्ति के तकार में "तपरस्तत्का०" यह सूत्र नहीं लगता है। क्योंकि यदि विभक्ति के तकार में भी "तपरस्तत्का०" लग जावे तो "उपसर्गादति" इस सूत्र में उपसर्गात् इस विभक्ति के तकार से ही ऋति का ऋ ह्रस्व लिया जाता फिर ऋति में तपर करण क्यों किया वही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'विभक्तिस्थतकारे तपरस्तत्कालस्य इति सूत्रं न प्रवर्तते, इसी वास्ते'उपेन्द्रः,रमेशः,यह ह्रस्व और दीर्घ के उदाहरण दिये हैं॥

'उरण्रपरः'। उ यह ऋ शब्द का षष्ठ्येकवचन है। और ऋ ऌ की सवर्ण संज्ञा है इस वास्ते कहते हैं—ऋ इति त्रि०। ऋ यह तीस प्रकार की संज्ञा वाला है यह कह चुके हैं। तत्स्थाने इति। उस ऋ ऌ के स्थान में होने वाला जो अण् वह र्पर और

लृपर हुए ही प्रयोग में प्रवृत्त हों। यहां रकार से र प्रत्याहार लिया जाता है इस वास्ते 'र' से 'रल' इन दो वर्णों का बोध करना। अब कृष्ण + ऋद्धिः यहां पर आद्गुणः करके गुण प्राप्त रहा गुण संज्ञा 'अ, ए, ओ' इन तीनों की है तो कौन हो इस वास्ते 'उः ण परः ने यह कहा कि रपर और लपर ही हों। दोनों में कौन हो इस वास्ते कहते हैं। तत्रांतरतम्यादिति, कण्ठ मूर्धा स्थानिक 'अ ऋ के स्थान में अर् और कंठ दन्त स्थानिक अ लृ को अल् होते हैं। कृष्णर्द्धिः सिद्ध होने पर। अचो रहाभ्यां इस करके ध को विकल्प से द्वित्व हो गया—फिर 'झरो झरि०' हल् से परे झर् का लोप हो विकल्प करके सवर्ण झर् परे रहते। इससे द् का लोप द्वित्वाभावेति० द्वित्व का अभाव कर दिया-लोप कर दिया तो एक 'ध्, वाला रूप बना, "असति लोपे" लोप कहीं किया और द्वित्व भी नहीं किया तो दो 'ध्, हुए द्वित्व लोपयोर्वा० द्वित्व भी कर दिया और लोप भी कर दिया तब भी दो ध् हुए सति द्वित्वे० द्वित्व कर दिया और लोप नहीं किया तब तीन ध् हुए क्योंकि विकल्प करने वाले सूत्र लगाओ चाहे ना लगाओ लगाने वाले की इच्छा पर निर्भर है। केवल 'अ वोर०,'झरो झरि०,इन दो सूत्रों ने तीन रूप बना दिये। शंका। यहां तो 'झलां जश् झशि, से ध् को द् हो गया फिर ध् को द्वित्व कैसे करते हो। उत्तर। पूर्वत्रासिद्धम् करके जश्त्व असिद्ध है। शंका पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने। द्वित्व भिन्न कार्य करने 'पर पूर्वत्रा सिद्धं, लगता है यहां तो द्वित्व ही करना है तो असिद्ध नहीं होना चाहिये। उ० जहां पर फल विशेष होता है वहां पर यह वचन लगता है यहां विशेष फल नहीं है इस वास्ते नहीं लगता। 'तव + लृकारः, अत्रापि पूर्ववत् लपरादेशे तवल्कार इति रूपम्। यहां भी

'यणोमयो द्वे वाच्ये, इसमें यणः को पंचमी और मयः को षष्ठी मान कर यण से परे मय् को द्वित्व हो यह अर्थ करके ककार को द्वित्व करना और ल् को 'अनचिच, करके इस प्रकार से चार रूप बन गये। विकल्प विधायक सूत्र लगाने वाले की इच्छा पर निर्भर है इस वास्ते कहते हैं द्वित्वं लस्यैव० अनचिच, करके द्वित्व ल् ही को होता है क को नहीं होता. कस्यैव = यणो मयो करके क को द्वित्व होता है ल को नहीं, नोभयोरिति = दोनों को द्वित्व होता है और दोनों को नहीं भी होता। इस वास्ते तवल्कारादि को विद्वानों ने चार रूप कहे हैं। वृद्धि रेचि० अवर्ण से एच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो। एत्ये धत्यूठ्०। इसमें 'आद्गुणः, से अवर्ण की 'वृद्धि रेचि, से एच् की अनुवृत्ति करना। और एच् का सम्बन्ध 'एति, 'एधति, के साथ करना ऊठ के साथ नहीं क्योंकि 'सम्भव व्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत्, । जहां सम्भव हो यानी मिलता हो वहां विशेषण सार्थक होत है। एति एधति में एजादि मिलता भी है और नहीं भी मिलता है इस वास्ते इन्हीं के साथ करना चाहिये। ऊठ् कहीं भी एजादि नहीं मिलता इस वास्ते इसके साथ एजादि का अन्वय नहीं करना। अवर्ण से एजादि एति एधति और ऊठ् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो। उप + एति, उप + एधते यहां आद्गुणः को उपेन्द्रः में चरितार्थ होने से 'वृद्धि रेचि, यह निरवकाश सूत्र गुण को बाध लेगा फिर एति एधति का पाठ क्यों लिखा इस वास्ते कहते हैं 'पररूप गुणापवादइति उप + एति, उप + एधते में 'एङि पर रूपम्, करके पररूप प्राप्त रहा और ऊठ् परे रहते गुरु इसने बाध लिया। "एत्ये धत्यूठ्सु" इसमें एच् की अनुवृत्ति क्यों की इस वास्ते कहते हैं—"एजाद्योः किम्" यदि अनुवृत्ति नहीं

करते तो यह अर्थ होगा कि अवर्ण से इण् एध् और ऊठ् परे रहते वृद्धि एकादेश हो–तब तो उप+इतः इस तस् के रूप में और मा भवान् प्र+इदिधत् इस णयन्त एध् के रूप में भी वृद्धि हो जाती इस लिये अचि की अनुवृत्ति की है। शंका। इदिधत् में तो प्राप्ति नहीं क्योंकि एध् नहीं है। उत्तर० प्रकृतिग्रहणे णयन्तस्यापि ग्रहणम्। प्रकृति के ग्रहण में णयन्त का भी ग्रहण होता है इस वास्ते इदिधत् का भी ग्रहण हो गया। शं०। अव–आ+इहि यहां आद्गुणः से गुण किया—अव+एहि इस अवस्था में "अन्तादिवच्च" कर के पूर्वान्तवद्भावेन आङ् मान कर "ओमाङोश्च" कर के पर रूप प्राप्त रहा और एत्येधत्यू० से वृद्धि औ: "एङि पर रूपं" से पर रूप तो इन तीनों में से कौन हो तब 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' करके परत्वात् 'ओमाङोश्च' और 'एङि पर रूपम्' यह दोनों प्राप्त रहते इस वास्ते एत्येधत्यू० यह निरवकाश हो जायगा क्यों कि इस के विषय में कहीं तो एङि पर० पावेगा कहीं ओमाङोश्च–कहीं आद्गुणः–तो यह व्यर्थ हो कर बाधक होगा और बाधक पक्ष में दो पक्ष होते हैं एक बाध्यसामान्यचिन्ता पक्ष, और एक बाध्य विशेष चिन्ता पक्ष,तो बाध्य विशेष पक्ष मूलक जो परिभाषा है "पुरस्तादपवा०" पूर्व पठित अपवाद अनन्तर जो विधि है उस का बाधक होता है, उत्तर का नहीं, इस वास्ते एत्येधत्यूठ्० निरवकाशत्वात्, एङि पर रूपम् इस का बाधक होगा और यह बात युक्तियुक्त भी है क्यों कि जब एङि पर रूपं को बाध कर उपेति उपैधते में वृद्धि कर के चरितार्थ हो गया तब ओमाङोश्च के बाधने में कोई प्रमाण नहीं है इस वास्ते अवेहि में परत्वात् ओमाङोश्च पर रूप कर देगा–इस वास्ते कहते हैं "पुरस्तादपवाद०"। पुरस्तादपवाद न्याय से यह एत्येधत्यू० सूत्र विहित

वृद्धि "एङिपररूपं" इस की बाधिका होगी ओमाङोश्च की नहीं "तेनावैहि०" इस वास्ते अवैहि यह जो कालिदासादिकों ने वृद्धि किया है यह असाधु है अर्थात् अयोग्य है। इसी वास्ते 'अवेहि तन्मण्डन मिश्र धाम" यह प्रयोग संगत हुआ। वास्तविक में 'अवैहि, में अव उपसर्ग नहीं है किन्तु उपसर्ग प्रकृति रूप अव्यय है इस वास्ते वृद्धि करना ही युक्ति युक्त है। दीक्षित कथन सर्वथा अनुचित है इति गुरु चरणाः। 'अक्षादू०, अक्ष शब्द के अन्त्य अवर्ण से ऊहिनी शब्द का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश हो। अक्षौहिणी। 'पूर्वपदात्संज्ञाया मगः' इति णत्वम् 'स्वादिरेरिणोः, । स्व शब्द के अन्त्य अवर्ण से इर् और इरिण् शब्दों का अवयव अच् परे रहते पूर्व परके स्थान में वृद्धिरूप एकादेश हो। स्वैरिणी। शंका यहां इरिण् शब्द परे नहीं है। उत्तर 'प्रातिपदिक ग्रहणे लिङ्ग विशिष्टस्यापि ग्रहणम् ,प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्ग बोधक जो प्रत्यय तद्विशिष्ट का भी ग्रहण होता है इससे 'इरिणी, परे रहते भी वृद्धि हो गई। 'प्रादूहो०, प्र शब्द के अन्त्य अवर्ण से ऊह ऊढ ऊढि एष एष्य शब्दों का अवयव अच् परे रहते पूर्वपर को वृद्धि हो। वि० गुरुजी जैसे प्र + ऊढः प्रौढः यहां 'प्रादूहो०, से वृद्धि हो गई इसी प्रकार प्र + ऊढवान् यह क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द परे रहते भी वृद्धि होनी चाहिये। गु० बेटे प्रौढ के समान प्रोढवान् में वृद्धि नहीं होती है किन्तु आद्गुणः से गुण होता है क्योंकि 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम् , अर्थवान् और अनर्थक का जहां ग्रहण पावे वहां अर्थवान् का ही ग्रहण होता है अनर्थक का नहीं। प्रौढः में जो ऊढ शब्द है उसका ऊढाकर्मकंवहनम् यह अर्थ है और ऊढवान् का वहन कर्तृभूत यह अर्थ है। इस वास्ते वार्तिक में ऊढ शब्द

अर्थवान् है और ऊढवान् में समुदाय ऊढवान् अर्थवान् है केवल ऊढ़ अनर्थक है क्योंकि 'समुदायो हि अर्थवान् एक देशोऽनर्थकः' इस वास्ते यहाँ वृद्धि नहीं होती है। वि० गुरुजी इस परिभाषा में क्या प्रमाण है। गु० 'व्रश्चभ्रस्जसृज०, इस सूत्र में राज् से पृथक् भ्राज् का पाठ क्यों पढ़ा क्योंकि परिभाषा तो है ही नहीं जो नियम कर देती इस वास्ते राज् से भ्राज् घटक राज् का भी ग्रहण हो जाता, फिर भ्राज् का पाठ पृथक् क्यों पढ़ा, वही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है 'कि अर्थवद्ग्रहणे०. इसी वास्ते ग्रंथकार कहता है 'व्रश्चेति०, इस सूत्र में राज् से पृथक् भ्राज् ग्रहण ज्ञापक है, 'तेन ऊढ ग्रहणे०, इस वास्ते ऊढ ग्रहण से क्तान्त ही लिया जाताहै नतु क्तवत्वन्त०,क्त्वन्तका एक देश नहीं। वि० गुरुजी 'व्रश्चेति, सूत्र में तो भ्राज् ग्रहण व्यर्थ नहीं है क्योंकि भ्राज् धातु दो हैं एक तो फणादि गण पठित। दूसरी फणादि से बाहर की है जब सूत्र में भ्राज् ग्रहण करते हैं तब तो 'सहचरितासहचरितयोर्मध्ये सहचरितस्यैव ग्रहणम्, । सह चरित और असहचरित के ग्रहण में सहचरित का ही ग्रहण होता है असहचरित का नहीं। इस परिभाषा से फणादि राज् के साहचर्य से फणादि भ्राज् का ही ग्रहण होगा बाहर की का नहीं। अब भ्राज् ग्रहण नहीं करोगे तो सूत्र पठित राज्से सब भ्राज् घटक राजों का ग्रहण हो जायगा तो जो फणादि से बाहर की भ्राज् हैउसमें भी 'व्रश्चेति सूत्र ज् का प् कर देगा विभ्राट् विभ्राड् ऐसे रूप बनेंगे अब सिद्धान्त में विभ्राग्-क् रूप होते हैं इस वास्ते भ्राज् ग्रहण व्यर्थ नहीं हो सकता है। फिर परिभाषा में क्या प्रमाण। गुरु। बेटे सूत्र पठित राज् से फणादि भ्राज् का ही ग्रहण किया जायगा, फणादि से बाहर का नहीं लिया जायगा

क्योंकि हम राज् के स्थान में राज़ ऐसा ऋकारानुबन्ध पढ़ देंगे, और जो फणादि से बाहर की भ्राज् है उसके पूर्व ऋकार अनुबन्ध लगा देंगे–ऋ भ्राज् ऐसा पढ़ेंगे तो फणादि ही भ्राज् का ग्रहण होगा बाहर का नहीं। फिर भ्राज् ग्रहण व्यर्थ होकर परिभाषा ज्ञापन कर देगा और विभ्राक्—ग् भी बन जायंगे। वि० गुरूजी यह बात ठीक नहीं क्योंकि व्रश्चेति सूत्र में धातु की अनुवृत्ति आती है अथवा व्रश्चादिकों के साहचर्य से राज् धातु का ग्रहण है भ्राज् घटक राज् धातु का ग्रहण नहीं है। राज् से भ्राज् कदापि नहीं ले सकते हैं इस वास्ते भ्राज् का पाठ व्यर्थ नहीं है फिर परिभाषा में क्या प्रमाण। गु० 'स्वंरूपं शब्दस्याशब्द संज्ञा,। इस सूत्र से लब्ध यह परिभाषा है। क्योंकि शब्द का अर्थविशिष्ट रूप बोध्य है. और अर्थ विशिष्टरूप का शब्द बोधक है। इससे यह परिभाषा सिद्ध हुई। अथवा 'प्राद्वहो' में 'समर्थः पद विधिः, की उपस्थिति करना तो यह अर्थ होगा कि पूर्व पद घटक जो अवर्ण उससे उत्तर पद ऊढ आदि शब्द परे रहते वृद्धि हो। तब तो प्रोढवान् में प्राप्ति ही नहीं क्योंकि ऊढवान् उत्तर पद है उढ नहीं इस वास्ते यह शंका समाधान निरर्थक है। इष धातु दो प्रकार का है एक ह्रस्वोपध द्वितीय दीर्घोपध तो यहां किस का प्रैषः प्रैष्यः रूप बनता है–इस बात को कहते हैं 'इष इच्छायामित्यादि' 'यस्विति,। जो ईष उञ्छे धातु है और ईष गति हिंसा दर्शनेषु धातु है इन दोनों को दीर्घोपध होने पर घञ् और ण्यत् प्रत्यय करने पर 'पुगन्त लघू. करके गुण नहीं होता क्योंकि लघूपध नहीं है इस वास्ते आदगुणः करके गुण करना प्रेष प्रेष्यः ऐसे रूप बनेंगे वृद्धि नहीं होगी। एष के साहचर्य से एष्य भी अनव्यय ही लेना क्योंकि एष अनव्यय है इस वास्ते ल्यप् प्रत्यय का जो एष्य है उस

का प्रेप्य रूप बनता है 'ऋते च०, अवर्ण से तृतीया समासका घटकीभूत अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो।'ऋतेच समासे०,ऐसा ही सूत्र करना था तृतीया ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं तृतीयेति किम्। परमश्चासौ ऋतः इति परमर्तः। यहां कर्मधारय समास है अतः वृद्धि नहीं हुई आद्गुणः करके गुण हो गया।

'प्रवत्स०, आदि शब्दों के अन्त्य अवर्ण से परे ऋण शब्द का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो। 'ऋणस्येति,कर्ज दूर करने के वास्ते जो अन्य से कर्ज लिया जावे उसे ऋणार्णम् कहते हैं। दश ऋणानि यस्मिन् असौ दशार्णो देशः दश दुर्ग वाला देश अथवा दश ऋणानि जलानि यस्याम् सा दशार्णा नदी। इस में क्या प्रमाण कि ऋ शब्द के दो अर्थ हैं इस वास्ते कहते हैं 'ऋण शब्दस्येति, ऋण शब्द दुर्ग भूमि में और जल में रहता है। 'उससर्गा०, । अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो 'गुणापवादः। प्र इति अव्यय पदम् ऋच्छति इति क्रिया पदम्। उपसर्गादति इति-पदान्तप्रवृत्तिरकारस्यऋच्छति ऋकारस्य च वृद्धौ प्रार्च्छति, उपार्च्छति। उभयत्र अन्तादिवच्च। अन्तश्च आदिश्च अन्तादी ताभ्यां तुल्यम् अन्तादिवत् यह जो एकादेश है पूर्व स्थानी घटित समुदाय वृत्ति जो धर्म है तद् विशिष्ट हो और यह जो एकादेश है पर स्थानी घटित समुदाय वृत्ति जो धर्म है तद्विशिष्ट हो। एकादेश कौन आर् वृद्धि इस का पूर्व स्थानी कौन प्रवृत्ति अकार तद्घटित धर्म कौन पदत्व वह पदत्व धर्म वाला आर् हो-तो आर् को पद के अन्त का मान कर

'खरवसानयोः, खर परे रहते और अवसान में पदान्त रेफ का विसर्ग हो इति विसर्गे प्राप्ते। इस करके विसर्ग प्राप्त रहे। इस वास्ते कहते हैं 'अन्तवद्भावेनेति०, अन्तादिवच्च करके अन्तवद्भाव मानकर पदान्त रेफ का विसर्ग नहीं होता है उभयथर्क्षु कर्तरि-चर्षि देवतयोः, इत्यादि निर्देश से। अर्थात् उभयथा + ऋक्ष, च + ऋषि यहां उभयथा इतना पद है और च यह पद है दोनों जगह आद्गुणः लगाने पर थर्क्षु, चर्षि यह पद बन गये। परन्तु यहां पर भी अन्तादिवच्च से पद मान कर आचार्य ने विसर्ग नहीं किया। इसी से जानते हैं। अन्तवद्भाव से पदान्त रेफ का विसर्ग नहीं होता है।

वि० गुरु जी रेफ का विसर्ग हो जाय तो 'उरण रपरः, से रपर ही व्यर्थ हो जाय। गु० उरण् रपरः से किया हुआ रपर व्यर्थ नहीं है क्योंकि कृष्णद्धिः में चरितार्थ है। वि० अच्छा 'उभय-थर्क्षु, कर्तरि चर्षि देवतयोः यह दोनों निर्देश, आपके ठीक नहीं है क्यों आद्गुणः, जो सूत्र है सो पदद्वय सम्बन्धी वर्णद्वय की अपेक्षा करता है इस वास्ते बहिरंग हो गया तो 'असिद्ध बहिरंग०, इस से 'खरव सानयोः०, की दृष्टि में असिद्ध हो जायगा तो विसर्ग की प्राप्ति ही नहीं। इस वास्ते निर्देश ठीक नहीं। गु० 'खरव सानयो०, यह रेफ और षकार वर्णद्वयापेक्ष होने से बहिरंग परिभाषा नहीं लगती तो निर्देश ठीक ही है। वास्तविक में तो यहां बहिरंग परि-भाषा लगती ही नहीं क्योंकि 'वाह ऊठ्, इस सपाद सप्ताध्यायी-स्थ सूत्र से ज्ञापित है तो सपाद सप्ताध्यायी में ही लगेगी त्रिपादी में नहीं 'खरवसानयोः, यह त्रिपादी है इसमें नहीं लगेगी। अतः निर्देश ठीक है। और दूसरी बात है कि भगवान् पतञ्जलिने

नार्कुटोनार्कलिः इत्यादिकों में रुत्वद्भाव से विसर्ग का निषेध किया है (रेफस्य पूर्वान्तवत्वेन विसर्जनीय प्रतिषेधो वक्तव्यः) रेफ को पूर्वान्त वद्भाव मानकर विसर्ग का प्रतिषेध कहना। इस वार्तिक से निषेध किया है। यदि बहिरङ्ग परिभाषा से निषेध होता तो पतञ्जलि वार्तिक क्यों करते। इससे भी जानते हैं कि बहिरङ्ग परिभाषा नहीं प्रवृत्त होती है। अतः निर्देश से विसर्ग का वारण करना।

वि० अच्छा विसर्ग नहीं हुआ परन्तु प्र + ऋच्छति यहां ऋत्यकः से पक्ष में प्रकृति भाव क्यों नहीं होता है। गु० 'येन विना यदनुपपन्नत्तनाक्षिप्यते, जो जिसके विना नहीं रह सका है उस का उससे आक्षेप हो जाता है' जैसे घटमानय यहां जाति को मूर्त्त होने से आनयन असंभव है इस वास्ते जाति से व्यक्ति का आक्षेप हो जाता है। इसी प्रकार 'उपसर्गादृति, में भी उपसर्ग से धातु का आक्षेप हो जायगा क्योंकि उपसर्ग संज्ञा क्रिया के विना नहीं होती है। अतः उपसर्ग से क्रिया का आक्षेप हो जायगा फिर धातु ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं 'उपसर्गेणैव, उपसर्ग से ही धातु का आक्षेप सिद्ध है फिर धातु ग्रहण क्यों किया तो योग विभाग करना 'उपसर्गादृति, यह प्रथम सूत्र हुआ, अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु का अवयव अच् परे रहते वृद्धि हो। और दूसरा हुआ "धातौ" इसमें पूर्व सूत्र से उपसर्ग और ऋति की अनुवृत्ति करना। अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु का अवयव अच् परे रहते वृद्धि हो। यह अर्थ करना। अब कहते हैं जो पूर्व सूत्र ने कार्य किया वही "धातौ" ने किया फिर योग विभाग व्यर्थ हो कर नियम करता है कि वृद्धि ही हो अन्य कार्य

हो, तेन ऋत्यक इति पाक्षिकं पि प्रकृति भावोऽत्रभवति, इससे ऋत्यकः करके पक्ष में प्रकृति भाव नहीं होता है।

वि० गुरु जी धातु ग्रहण व्यर्थ नहीं है क्योंकि जब सूत्र में धातु ग्रहण है तब हम उपसर्ग कैसा लेते हैं कि उपसर्ग संज्ञा जिसको मान कर हो वही धातु परे रहते वृद्धि होती है। अन्य धातु के योग में उपसर्ग संज्ञा हो वहां नहीं हो जैसे प्र–गत ऋद्धः र्द्धः यहां गत को मान कर उपसर्ग संज्ञा है और ऋद्धः के साथ जोड़ने से प्र उपसर्ग नहीं माना जाता है इस वास्ते यहां गुण होकर र्द्धः रूप बनता है अब धातु ग्रहण नहीं करेंगे तो यहां भी वृद्धि हो जायगी इस वास्ते धातु ग्रहण व्यर्थ नहीं है।

गु० यहां प्र की गमन क्रिया को मान कर उपसर्ग संज्ञा है ऋद्ध जो ऋकारादि धातु है उसको मान कर नहीं है अतः उपसर्गाः क्रिया, में 'यत्क्रिया युक्ताः ादयस्तंप्रत्येव गतुपसर्ग होति। इस वास्ते धातु ग्रहण उक्तार्थ में ही ज्ञापक है। वि० रु० जी "उपसर्गादृति" इस सूत्र में उपसर्ग पद के स्थान पर उपसर्ग से तेर्ऋति धातौ, ऐसा सूत्रकर देंगे क्योंकि इसमें लाघव है। गुरु० को योग च्छ च्छति यहां भी वृद्धि हो जायगी क्योंकि 'अच्छ गत्यर्थ अवर्णान्त वेषु, इससे अच्छ की गति संज्ञा है। अतः उपसर्ग ग्रहण द्धि हो। या है।

र ऋति 'वा सुप्या०,। अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि सुप् धातु का धातु का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश व कहते हो विकल्प करके। सूत्रमें वा ग्रहण से ही विकल्प सिद्ध होजायगा र योग फिर आपिशलि ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं "आपिशलि न्य कार्य ग्रहण मिति" आपिशलि ग्रहण पूजार्थ है 'धन्योऽयं ग्रन्थो यस्मिन्

आपिशलेरपि सम्मतिः । प्रकर्षेण ऋषभमिच्छति प्रार्षभीयति इस ऋति की अनुवृत्ति है और ऋ ॡ वर्ण की सवर्ण संज्ञा है इस वास्ते ऋ से ॡ भी लिया जायगा इस वास्ते कहते हैं 'सावर्ण्यात् ॡवर्ण०, । ऋति में तपर होने से 'तपरस्तत्काल०, लगने से दीर्घ का ग्रहण नहीं होता है इस वास्ते कहते हैं 'तपरत्वादिति, । उप + ऋकारीयति यह स्थिति दिखाई है विकल्प का रूप नहीं है। 'एङि पर०, अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु का अवयव अच् परे रहते पर रूप एकादेश हो । 'इह' वा सुपीति०, यहां वृत्तिकार ने 'वासुप्या० से वासुपि की अनुवृति करके वाक्य भेद से व्याख्या की है अर्थात् द्वितीय वाक्य बनाना । अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि सुप् धातु परे रहते विकल्प करके पर रूप हो। इस वास्ते उप + एड कीयति इत्यादिकों में विकल्प से पररूप करना ।

'एवेचेति,० । अवर्ण से अनियोग अनिश्चित अर्थ में वर्त्तमान एव शब्द परे रहते पूर्व परके स्थान में पर रूप एकादेश हो । नियोगोऽवधारणम् । नियोग निश्चय को कहते हैं यहां अनवक्लृप्तावेव शब्दः यहां अनिश्चय का वाचक एव शब्द है 'एवेच, इतना वार्त्तिक करने से कार्य चल जायगा फिर अनियोग ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं 'अनियोगे किम, अनियोग क्यों कहा तवैव तेरे ही घर पर भोजन करूगा यहां निश्चय अर्थ है इस वास्ते वृद्धि हो गई अन्यथा पररूप होकर तवेव बन जाता इस वास्ते किया ।

"अचोऽन्त्या"० अचों के मध्य में अन्त्य अच् वह है आदि अवयव जिसका ऐसा समुदाय टि संज्ञक हो यहां अचः में निर्धारण में षष्ठी है ।

"शकन्ध्वादि"० शकन्ध्वादिकों की सिद्धि के लिये पर रूप कहना कस्येत्याह–तच्चटेः । वह पर रूप टि को होता है

शक + अन्धु यहां दो पद हैं शक पृथक् अन्धु पृथक् । शं० शक में जो "क" में "अ" है वह किसी का आद्यावयव नहीं इसवास्ते टि संज्ञा नहीं होनी चाहिये । उत्तर । आद्यन्तवदे कस्मिन् से आद्यावयव मान कर टि संज्ञा करना । "आकृति" आकृत्या रूपेण गण्यते ज्ञापयते यस्मिन् असौ आकृति गणः । मृतादण्डा ज्जात इति मार्तण्डः सूर्यः ।

"ओत्वोष्ठयोः" अवर्ण से ओत्व ओष्ठ शब्दों का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पर रूप एकादेश हो विकल्प करके समास में । वृद्धि का बाधक है । स्थूलश्चासौ ओतुः इति बिम्ब मिव ओष्ठौ यस्येति । समासे किम् । समास क्यों किया तवैव । यहां समास नहीं है पर रूप हो जाता इस वास्ते समासे करना । "ओमाङोश्च" अवर्ण से ओम् और आङ् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो । शिव + आङ् + इहि-इति पद त्रयम् यहां वकार वृत्ति अकार को और आङ् के आकार को 'अकः सवर्णे दीर्घः, करके दीर्घ प्राप्त रहा । और आको और इहि की इको आद्गुणः से गुण प्राप्त रहा । तो कौन होना चाहिये यह शंका हुई । उत्तर 'धातूपसर्ग कार्यमन्तरङ्गम्, धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरंग होता है तो असिद्धं बहिरंग मन्तरंगे करके आद्गुणः की दृष्टिमें 'अकः सवर्णे, असिद्ध होगया इस वास्ते प्रथम आद्गुणः से गुण होगया तो शिव + एहि अब अन्तादिवच्च करके पूर्वान्त वद्भाव से ए में अंगत्व धर्म मान कर पर रूप कर देना तो शिवेहि बन गया ॥ 'अव्यक्तानुक, । अव्यक्त

शब्द का अर्थ ध्वनि है। ध्वनि का अनुकरण जो शब्द तद् अव
यव जो अत् उसको पर रूप एकादेश हो इति शब्द परे रहते
'एकाचोन, । ध्वनि का अनुकरण जो एकाच् शब्द तद् अवय
जो अत् उसको पर रूप न हो।

'नाम्रेडि०, आम्रेडित सञ्ज्ञक को पर रूप न हो अन्त्य तक
मात्र को विकल्प करके हो। पूर्वस्यापवादः। 'डाचि बहुलमि
डाच् परे रहते बहुलता से द्वित्व हो। यहां डाच् नहीं है तो कै
द्वित्व हो गया इस वास्ते कहते हैं बहुल वचनात्, बहुल ग्रह
से द्वित्व होगया। 'तस्येति, । अत्र पर शब्दोऽवयव वाची । द्वि
का जो पराऽवयव वह आम्रेडित संज्ञक हो। 'झलांज, पदान्त
झलों को जश हो। 'अकःसवर्णे०, अक् से सवर्ण अच् परे रह
पूर्व पर के स्थान में दीर्घ रूप एकादेश हो।

शंका। 'नाज्झलौ, यह सूत्र अच् हल् की सवर्ण संज्ञा
निषेध करता है इस वास्ते अक् से सवर्ण परे अच् ही मिलेगा
परे रहते दीर्घ हो ही नहीं सकता है फिर अचि किम् अच् ग्रह
क्यों किया। उ० कुमारी शेते यहां पर पूर्व वर्णानामु० इ
भाष्योक्ति से 'तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्, 'नाज्झलौ, इन दो
सूत्रों से प्रथम 'अणुदित् सवर्णस्य, इस ग्राहणक शास्त्र
वाक्यार्थ बोध नहीं है इस वास्ते 'नाज्झलौ, के वाक्यार्थ बोध
वसर में अच् पद से वर्ण समाम्नाय पठित ह्रस्व वर्ण ही इस
में लिया जायगा दीर्घादि नहीं तो दीर्घ इकार और शकार के ता
स्थान और विवृत प्रयत्न होने से सवर्ण संज्ञा हो जायगी 'नाज्झलौ
निषेध नहीं करेगा तो कुमारी शेते में रकारवृत्ति इकार और
शकार को दीर्घ हो जायगा । अतः अचि करना चाहिये इस

वास्ते कहते हैं 'नाञ्झलौ विति०, नाञ्झलौ यह दीर्घ और शकार की सवर्ण संज्ञा का निषेध नहीं करता है ग्रहणक शास्त्र का (अर्थात् अणुदित सूत्र का) सवर्ण संज्ञा विधायक से और निषेध जो नाञ्झलौ है इससे प्रथम वाक्यार्थ बोधकी असिद्धि होने से अर्थात् वाक्यार्थ बोध न होने से।

वि० अच्छा जब सबका वाक्यार्थ बोध हो जायगा तब 'अणुदित्स, सूत्र 'नाञ्झलौ में लग जाय तब तो अचि व्यर्थ है।

गु० 'नापि स्वांगे नापि स्वस्मिन्, । 'अणुदित्स० सूत्र अपने में और अपने अङ्ग भूत नाञ्झलौ में नहीं लगता है। 'अकः सवर्णे० यह सूत्र अक् से सवर्ण अच् परे रहते दीर्घ करता है तो अक् से सवर्ण परे अक् ही मिलेगा अतः अकोऽकि दीर्घः ऐसा ही सुवाच्य है। सवर्ण ग्रहण नहीं करना चाहिये इत्याशयेनाह। 'अकोऽकि०, । शं० सवर्ण ग्रहण नहीं करेंगे तो "अ"को ईकोदीर्घ हो जायगा

उ० यथा संख्य से कार्य चल जायगा।

वि० ऋ ऌ की सवर्ण संज्ञा होने से यथा संख्य नहीं लगेगा।

गु० जाति पक्ष मान कर निर्वाह हो जायगा ऋत्व जात्यवच्छिन्न ऌ भी है ऋ ऌ की यथा संख्या मान कर दीर्घ हो जायगा अतः सुवच है। "ऋति सवर्णे०" ऋकार से सवर्ण ऋ परे रहते ऋ हो विकल्प करके। होतृ + ऋकारः, होतृकारः पक्षे दीर्घः होतॄकारः इति रूपद्वयम्। एवम् "ऌति सवर्णे ऌ वा"

ऋ से सवर्ण ऌ परे रहते ऌ हो विकल्प करके। होतृ + ऌकारः होत्ऌकारः पक्षे दीर्घः होत्ॡकारः इति रूप द्वयम्। एवम् " ऌति सवर्णे ऌवा, ऋ से सवर्ण ऌ परे रहते ॡ हो विकल्प करके। होतृ + ऌकारः, होत्ऌकारः। 'पक्षे दीर्घः, सावर्ण्यात् ऋकारः। सवर्ण होने से अर्थात् ऋ ऌ की सवर्ण संज्ञा होने से दीर्घ ऋ ही होगा ॡ नहीं होगा क्योंकि ऌ को दीर्घ का अभाव है। वि० गुरु जी यहां तो 'अकः सवर्णे सूत्र ही से द्वि मात्रिक ऋ ऌ हो जांयगे फिर यह वार्त्तिक क्यों किया। गु० वार्त्तिकों से दीर्घ की अपेक्षा विलक्षण ऋ ऌ बनते हैं इस वास्ते वार्तिक किये हैं उस विलक्षणता को ग्रन्थकार कहते हैं 'आद्यस्येति, आद्य जो होतृकारः है उसके बीच में दो रेफ हैं और उनकी एक मात्रा है और चारों तरफ अच् भक्ति रहती है और 'द्वितीयस्यमध्ये, और द्वितीय जो ऌकार है उसके बीच में दो लकार हैं और इन्हों की एक मात्रा है और चारों तरफ अच् मात्र रहता है यह विलक्षणता है अतएव वार्तिक किये हैं।

वि० गुरु जी वार्तिक करने यदि आवश्यक ही थे तो संज्ञा शब्दों को अर्ध मात्रिक होने से " ऋति सवर्णे लोपः " ऐसा ही वार्तिक कर देते ऋ ग्रहण क्यों किया। गु० कार्य तो हो जाता है परन्तु जो वार्त्तिकों से ऋ ऌ आदेश होते हैं वे लोप करने से नहीं होंगे। इस वास्ते लोप नहीं करना। एक प्रकार से तो वार्तिक का खण्डन है जैसे 'तुल्यास्य' इस सूत्र में के भाष्य में तो 'अकः सवर्णे दीर्घः" इसीसे दोनों ऋकारों के स्थान में रेफद्वयवत्तारूप गुण कृत आन्तर्य से, ऌकार में लकारत्व आन्तर्य से दो रकार लकार वाले ऋ ऌ आदेश करके इन वार्तिकों का खण्डन किया

है। वि० वार्त्तिकद्वय से विहित अच्त्व कैसे होगा। गु० अइउण् सूत्र के अनन्तर पढ़ देंगे। वि० चारों तरफ अच् कैसे रहते हैं। गु० जैसे मातॄणाम् में ऋकार का एक देश रेफ माना है इसी प्रकार "वर्णैकदेशो वर्णग्रहणेन गृह्यते,, इस भाष्य से मान लेना चाहिये।

'इहेति०' यहाँ दोनों जगह ऋत्यकः से प्रकृति भाव कहेंगे।

"एङः पदा०" पदान्त एङ् से अत् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो। "सर्वत्रेति०" लोक और वेद में पदान्त में वर्तमान एङन्त गो शब्द को प्रकृति भाव हो अत् परे रहते विकल्प करके। " एङन्तस्य किम् "। शं०। सब जगह गो शब्द एङन्त ही मिलेगा फिर एङ् ग्रहण की अनुवृत्ति क्योंकी। उ० "चित्रा गावो यस्येतिचित्रगु तेषां अग्रम् चित्रगु अग्रम" यहां "गो० स्त्रियोरुप०" करके गो के ओकार को ह्रस्व 'उ, हो गया "सर्वे सर्व पदादेशाः"इस भाष्य से गो को'गु,हुआ तो 'स्थानिवद्भा वादेश०, इस से गु में गोत्व धर्म मान कर प्रकृति भाव हो जायगा इस वास्ते एङन्त कहा–शं०। गु में गोत्व धर्म मान लेते हो। हम भी"स्थानिवद्भाव" से एङन्तत्व धर्म मान लेंगे। उ०। एङन्त धर्म अल्मात्रवृत्ति धर्म होने से नहीं आ सकता है और "एकदेश विकृतमनन्यवत्" इस न्याय से मान लेंगे सो ठीक नहीं है क्यों कि "विकृतावयव निबन्धन कार्ये नाऽयं न्यायः" विकृत हो गया है निबन्ध जिसका ऐसा जो अवयव उस में यह न्याय नहीं लगता है। पदान्ते किं गोः। यहां गो ङस् गो अस् है। पदान्त सकार है गो नहीं है इस कारण से 'ङसिङसोश्च,से पूर्व रूप हो गया।

"अवङ् स्फोटा०" इस में अचि की अनुवृत्ति है पदान्त में वर्तमान जा एङन्त गो शब्द तिसको अवङ् आदेश हो अच् परे विकल्प करके। शं० इस सूत्र में धारा प्रवाह से अति की अनुवृत्ति करें या मण्डूक प्लुति से अचि की। उ०। अतीति निवृत्तं, अति यह निवृत्त हो गया। और मण्डूक प्लुति न्याय से अचि का सम्बन्ध हो गया। शं०। धारा प्रवाह न्याय का त्याग करके मण्डूक प्लुतिसे अचि का सम्बन्ध करने में क्या प्रमाण है। उ०"प्लुतप्रगृह्याअचि-नित्यम्" इस सूत्र में नित्य ग्रहण ही मण्डूक प्लुति में प्रमाण है क्योंकि भाष्यकार यह कहते हैं कि " प्लुत प्रगृह्या ,, में नित्य ग्रहण इस वास्ते है कि 'इन्द्रे च" में वा की अनुवृत्ति नहीं आवे। सो 'वा, की अनुवृत्ति तो 'इन्द्रेच, इस सूत्रारम्भ सामर्थ्य से ही नहीं आवेगी विकल्प करना होता तो पूर्व सूत्र से ही 'अवङ् , हो जाता फिर 'इन्द्रे च, क्यों किया यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'वा, की अनुवृत्ति नहीं आती फिर नित्य ग्रहण व्यर्थ है यह नित्य ग्रहण ही मण्डूक प्लुति में प्रमाण है। यदि 'अति, की अनु-वृत्ति होती तो भाष्यकार 'पूर्व सूत्रेणैव सिद्धे "इन्द्रे चेति" किमर्थम् , यह कैसे कहते इसी से जानते हैं कि 'अति, की निवृत्ति है और अचि का सम्बन्ध है। 'पदान्तेति किं, पदान्त क्यों कहा गो-डि-गोइ यहां सप्तम्येक वचन में भी अवङ् होकर 'आद्गुणः, से अनिष्ट हो जाता। इस वास्ते पदान्त कहा। अव 'एचो यवा०, से अव् होकर गवि बन गया। गो अग्रम् यहां जैसे प्रकृति भाव, अवङ् , पूर्व रूप होकर तीन रूप बनते हैं इसी प्रकार से गो अत्रः यहां पर भी प्रकृति भाव, अवङ् , पूर्व रूप होकर तीन रूप होने चाहियें। नित्य अवङ् करके गवात्रःकैसा ? इसवास्ते कहते हैं व्यवस्थित विभाषया

इति० "विगतावस्था विकल्परूपा जाताऽस्यामिति व्यवस्थिता साचासौ विभाषा चेति व्यवस्थित विभाषा,, यहां विकल्परूपावस्था होने से नित्य अवङ् हो गया अर्थात् कहीं नित्य कहीं विकल्प कहीं सूत्र नहीं लगता यही व्यवस्थित विभाषा है ॥ गवेन्द्रः में भी व्यवस्थित विभाषा मान कर नित्य अवङ् आदेश "अवङ् स्फो०" से कर देवेंगे फिर 'इन्द्रे च,सूत्र क्यों किया यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है "देवत्रातो गलो ग्राह इति योगे च सद्विधिः। मिथस्तेन विभाव्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः ॥ बस इतनी जगह व्यवस्थित विभाषा होती है अन्यत्र नहीं इस वास्ते इन्द्रे च सूत्र किया। "प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे" इस सूत्र की जगह "नान्तः पाद म० परे" ऐसा पढ़ेंगे क्यों कि इस में लाघव है उस और नान्त घटन की अनुवृत्ति 'सर्वत्र विभाषा गोः, इस सूत्र में करके यह अर्थ करेंगे। कि लोक और वेद में एङन्त गोशब्द को यत्प्राप्तं तन्न भवतिय अर्थात् "एङः पदान्ता" करके जो पूर्व रूप पावेगा वह न होगा तो कार्य चल ही जायगा प्रकृति भाव ग्रहण क्यों किया। उत्तर। यदि "प्रकृत्यान्त०:" के स्थान पर "नान्तः पाद" कर दिया जायगा तो 'न' की अनुवृत्ति "प्लुतप्रगृ०" में भी आवेगी तो प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते न हो यह अर्थ होगा तब तो "आगच्छ कृष्ण३ अत्र०" यहां पर और 'हरी एतौ, यहां पर प्लुत और प्रगृह्य संज्ञा का निषेध हो जायगा। इस वास्ते "नान्तः पाद०" नहीं करना किन्तु "प्रकृत्यान्तः" ही करना ठीक है इस वास्ते कहते हैं "अथ प्रकृति भावः" अर्थात् यहां से ही प्रकृति भाव का आरम्भ है "अवङ् स्फो०" यह पक्ष में प्रवृत्त होने के वास्ते लिख दिया है। प्रश्न। "प्लुत प्रगृह्या०" इस सूत्र में प्लुतादि पदार्थ ज्ञान के लिये प्लुत

और प्रगृह्य संज्ञा विधायक सूत्रों के अनन्तर ही "प्लुत प्रगृह्या अचि०" इस सूत्र को लिखना चाहिये फिर "इन्द्रे च" इस सूत्र के आगे क्यों लिखा। उ०। प्राचीन लोग "इन्द्रे च" इस सूत्र में 'नित्यं, और पढ़ते थे क्यों कि नित्य नहीं पढ़ते तो पूर्व सूत्र से 'वा, की अनुवृत्ति "इन्द्रे च" में चली आती और "इन्द्रे च" से "प्लुत प्रगृह्या०, इस में भी 'वा, की अनुवृत्ति आ जाती। इस वास्ते 'नित्यम, पढ़ते थे। सो ठीक नहीं क्यों कि यदि इस सूत्र में 'वा' की अनुवृत्ति आ जावे तो यह सूत्र ही क्यों किया। विकल्प तो "अवङ स्फो०" से ही हो जाता फिर 'इन्द्रे च, सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा इस वास्ते आरम्भ सामर्थ्य से ही 'वा, की अनुवृत्ति नहीं आवेगी फिर "इन्द्रे च नित्यम्,, इस में नित्य ग्रहण व्यर्थ ही है इस वास्ते 'नित्यम, नहीं कहना अर्थात् आरम्भ सामर्थ्य से ही "इन्द्रे च" में नित्य का लाभ हो जायगा, वही नित्य "प्लुत प्रगृह्या०" में भी आ जायगा फिर इस में नित्य ग्रहण क्यों किया इसी वास्ते प्रश्न करते हैं 'नित्यमिति किम्, उ० "प्लुत प्रगृह्या०" में नित्यग्रहण नहीं करेंगे तो 'हरी एतौ, यहां 'इको सवर्णे शाक०" से ह्रस्व हो जायगा क्योंकि 'हरी ईशौ, यहां पर "प्लुत प्रगृह्या०" इस सूत्र को लब्धावकाश है और 'चक्रि, अत्र यहां पर 'इको सवर्णे शा०" को लब्धावकाश है और अब 'हरी एतौ, यहां पर प्रकृति भाव और ह्रस्व दोनों प्राप्त रहे तो परन्वात् ह्रस्व हो जायगा तो 'हरिएतौ, 'हरी एतौ, दो रूप बन जांयगे। अतः "प्लुत प्रगृह्या० में नित्यम् ग्रहण किया है नित्य ग्रहण सामर्थ्य से यह सूत्र "इको सवर्णेशा०,, पर भी है तब भी उसका बाधक हो कर प्रकृति भाव कर देगा 'हरी एतौ, यही रूप करेगा दो नहीं इस वास्ते नित्यम् ग्रहण किया है। भाव यह

है कि इस सूत्र में नित्यम् का योग विभाग करना "प्लुत प्रगृह्या अचि" एक सूत्र और "नित्यम्" दूसरा सूत्र। प्रथम सूत्र का यह यर्थ है कि प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते प्रकृति भाव को प्राप्त होते हैं और "नित्यम्" इस सूत्र में पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति लाकर यह अर्थ होगा कि प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते नित्य प्रकृति से रहते हैं। पूर्व सूत्र से ही यह कार्य हो जाय फिर नित्य क्यों किया तो यह ही व्यर्थ होकर नियम करेगा कि प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते नित्य प्रकृति से ही रहते हैं। अन्य कार्य नहीं होता है इस वास्ते कहते हैं "हरी एतौ इत्यादौ०" हरी एतौ इत्यादि में यही प्रकृतिभाव नित्य हो "इको सवर्णे०" से ह्रस्व समुचित प्रकृतिभाव नहीं है। शं०। "आगच्छ कृष्ण ३ अत्र०" यहां "दूराद्धूते०" से प्लुत हुआ है यहसूत्र त्रिपादीस्थ होने से "प्लुत प्रगृह्या०" की दृष्टि में असिद्ध है तो प्रकृतिभाव नहीं होना चाहिये। उ०। यदि प्रकृति भाव विधायक की दृष्टि में प्लुत असिद्ध हो जाय तो प्लुत को प्रकृतिभाव करना ही व्यर्थ हो जाय इस वास्ते असिद्ध नहीं होता है "प्लुत प्रगृह्या०" इस सूत्र में "अवङ् स्फोटा०" से अचि की अनुवृत्ति आ जायगी पुनः इस सूत्र में अचि ग्रहण क्यों किया यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि जिस अच् को मान कर प्लुत और प्रकृतिभाव होते हैं उसी अच् निमित्तक सन्धि नहीं होती अन्य अच् निमित्तक हो जाती है। जैसे "जानु उ अस्य रुजति" इत्यादिकों में उ इसकी "ओमः" सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा भी है तथापि जानु में उकार को उ अस्य के उकार को "अकः सवर्णे०" करके दीर्घ हो गया, यही अचि का फल है।

"इको सवर्णेशा०,, इकः यह प्रथमा है क्योंकि स्युः क्रिया का कर्त्ता है। पदान्त जो इक् है वह असवर्ण अच् परे रहते प्रकृति से रहता है विकल्प करके और ह्रस्व भी होता है। इस सूत्र में चकार से प्रकृति भाव का आगे सूत्र से अनुकर्ष किया है सो ठीक नहीं क्योंकि ह्रस्व विधान सामर्थ्य से सन्धि नहीं होगी यदि सन्धि हो जाती तो ह्रस्व ही क्यों करते दीर्घ को भी "इकोय०" यण् कर देता तत्सामर्थ्य से क्या जानते हैं कि सन्धि नहीं होती है फिर प्रकृति भाव के अपकर्षार्थ चकार नहीं करना। इसी वास्ते कहते हैं। 'अत्र ह्रस्व०,, यहाँ ह्रस्व विधान सामर्थ्य से ही प्रकृति भाव हो जावगा पुनः प्रकृति भाव के अनुकर्षणार्थ चकार नहीं करना यह भाष्य में स्थित है। "चकारो न कर्त्तव्य इति,, सका इस प्रकार से खण्डन है कि चकार से प्रकृति भाव का अनुकर्ष नहीं हो सकता। क्योंकि परिभाषा है 'चानुकृष्टं नोत्तरोत्तरं। चकार से जिसका अनुकर्ष होता है उसका उत्तर से सम्बन्ध नहीं होता है। इस परिभाषा में क्या प्रमाण है "लः कर्मणि च०,, इस सूत्र में चकार क्यों किया जो प्रथम वाक्य में चकार है उसी से पूर्व वाक्य में "कर्तरि कृत्, इस सूत्र से चकार का अनुकर्ष करेंगे और उत्तर वाक्य में अनुवृत्ति ले जांयगे तब भी कार्य हो जायगा फिर द्वितीय चकार व्यर्थ हो कर ज्ञापन करता है 'चानुकृष्टमिति०, चकार से जो आगे से लाया जाता है उसका उत्तर में सम्बन्ध नहीं होता। तब तो यह प्रकृति-भाव "ऋत्यकः" इस सूत्र में नहीं जायगा उसके वास्ते ह्रस्व ग्रहण करना इस सूत्र में आवश्यक है। जब ह्रस्व करते हैं तो ह्रस्व विधान सामर्थ्य से ही सन्धि नहीं होगी तो पुनः प्रकृतिभाव के वास्ते

चकार नहीं करना। इसी वास्ते कहते हैं यह बात भाष्यकार भी मानते हैं यह दृढ़ प्रमाण दर्शित किया है। शं०। कहते हैंकि सूत्र में चकार इस वास्ते किया है कि तीन रूप बनें। एक जगह तो प्रकृति भाव होकर 'चक्रीअत्र, द्वितीय ह्रस्व होकर 'चक्रिअत्र,तृतीय पक्ष में 'चक्र्यत्र,इन तीन रूपों की सिद्धि के वास्ते सूत्र में प्रकृतिभाव के अनुकर्षार्थ चकार करना चाहिये। उ०। यदि ऐसा मानोगे तो भाष्य विरोध हो जायगा क्योंकि वैसे तीन रूप तो संहिता की अविवक्षा मान कर ही बना सकते हैं। 'चक्र्यत्र, यहां पर 'स्कोः संयोगा०" से ककार का लोप होना चाहिये। उ०। ई के स्थान में जो यकार हुआ है उसे 'अचः पर०, करके स्थानिवद्भाव कर लेंगे तो झल् परे नहीं रहेगा। इस वास्ते लोप नहीं हुआ। शं०। यहां स्थानिवद्भाव नहीं हो सकता क्यों कि "पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्,, त्रिपादीस्थ कार्य करने पर स्थानिवद्भाव नहीं होता है "स्कोः संयोगाद्यो०,, यह त्रिपादी है इस वास्ते लोप होना चाहिये। उ०।"तस्य दोषः संयोगादि लोप लत्व णत्वेषु,, संयोगादि लोप, लत्व, तस्य–पूर्वत्रा सिद्धे न स्थानिवत् इत्यस्य निषेधो भवति एतत् वचनं न प्रवर्त्तते" नहीं लगेगा तो स्थानिवद्भाव हो जायगा शं०। कहते हैं कि "ऋत्यकः" यह पृथक् सूत्र क्यों किया दोनों सूत्रों के स्थान पर "अकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वस्य,, ऐसा एक सूत्र करेंगे।उ०। होतृकारः, ब्रह्मर्षिः इत्यादिकों में सवर्णार्थ और अनिगर्थ 'ऋत्यकः, का पृथक् पाठ करना आवश्यक है। शं०। पदान्तात् किं इति–"इको सवर्णे०,, इस सूत्र में पदान्त की अनुवृत्ति क्यों की। उ०। पदान्त नहीं करेंगे तो गौरी यहां अपदान्त में भी सूत्र लग जायगा इस वास्ते पदान्त

कहा। अब "इको यणचि,, से यण् हो गया। "न समासे,, समास में ह्रस्व नहीं हो 'वाप्याम् अश्वः, यहां सप्तमी तत्पुरुष करने पर वापी अश्वः ऐसा रहता है यहां भी पदान्त इक् है इस वास्ते ह्रस्व पाया था वार्त्तिक ने निषेध कर दिया। "सितिच" सित् परे रहते भी ह्रस्व नहीं होता है पार्श्वम् पशूनां समूहः पार्श्वम् "पर्शवादिभ्यो ण्यस् वक्तव्यः" इससे ण्यस् प्रत्यय हो कर रूप बना है निषेध होने से यण् हो गया।

"ऋत्यकः" ऋत् परे रहते पदान्त अक् को ह्रस्व हो विकल्प करके। ब्रह्मा ऋषिः अनेन ह्रस्वे ब्रह्म ऋषिः ह्रस्वाभाव पक्षे गुण ब्रह्मर्षिः।

पार्श्वम्—यहां पर 'यचिभम्, इससे भसंज्ञा प्राप्त रही थी परन्तु 'सिति च, इस करके पद संज्ञा होगई इस वास्ते 'इको सवर्णे, से ह्रस्व प्राप्त रहा। 'सिति च-सित्, परे रहते ह्रस्व नहीं हो इसने निषेधकर दिया, फिर 'इको यणचि, से उ का व होकर पार्श्वम यह रूप बना। ॥ऋत्यकः॥ ऋत् परे रहते पदान्त अक्को ह्रस्व हो विकल्प करके। इस सूत्र में भी पदान्त की अनुवृत्ति करना। इस वास्ते कहते हैं—पदान्ता इत्येव। फल है आऋच्छत् यह ऋच्छ धातु का लङ् का रूप है ॥आडजादीनाम्॥ इस करके आट् आगम हो गया। यह आट् यदागमपरिभाषा से ऋच्छ का अवयव है पदान्त नहीं है किन्तु पदका आदि है पदान्त तकार है इस वास्ते ह्रस्व नहीं होता। समासे इति—यह सूत्र समास में भी ह्रस्व करता है—क्योंकि 'अनन्तरस्य विधिः प्रतिषेधोवा, इस न्याय से 'न समासे, वार्तिक 'इको सवर्णे, का निषेध

करता है सप्त च ते ऋषयः तेषामिति समासः यहां ऋत्यकः हो गया वक्यास्यटे० इत्यधिकृत्य इसका अधिकार करके स्वस्मिन् फल शून्यत्वेसति उत्तरोत्तरैक वाक्यतया फलनिष्पादकत्वम् अधिकारत्वम्। प्रत्यभिवादेइति० अभिवादम् २ प्रति इति प्रत्यभिवादम तस्मिन् प्रत्यभिवादे अशूद्रविषयक जो प्रत्यभिवाद (आशीर्वाद का उत्तर देना) तद्बोधक जो वाक्य उसकी टि को प्लुत हो और वह उदात्त हो ॥ "अभिवादये देवदत्तोऽहम्,, यह अभिवादन है। भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३ यह प्रत्यभिवाद है। इसकी टिकोप्लुत हो गया। स्त्रियांनेति। स्त्री विषय जो प्रत्यभिवाद उसकी टिकोप्लुत नहीं हो। अभिवादये गार्ग्यहम् यह अभिवादन है भो आयुष्मती भव गार्गि यह प्रत्यभिवाद है यहां गार्गी घटक इकार को प्लुत नहीं हुआ। नामगोत्रमिति। 'यत्र प्रत्यभिवाद वाक्ये जिस प्रत्यभिवाद वाक्य के अन्त में नाम अथवा गोत्र का प्रयोग किया जाय वहां पर ही प्लुत इष्ट है नेह यहां नहीं होता है। आयुष्मा नेधि भोः३ यहां गोत्र अथवा नाम का उच्चारण नहीं है। भोराजन्यविशामिति। भोराजन्यविश इनों की टि को विकल्प करके प्लुत हो भो-ब्राह्मण विट् वैश्य राजन्य क्षत्रिय दूराद्धूतेच दूर से सम्बोधन विषयक जो वाक्य उसकी टिके अचको प्लुत हो। हूत माह्वानं तद्धसम्बोधन मात्रस्योप लक्षणम् है हे प्रयोगे इति०। दूराद्धूते च इत्यनेन अन्त्यस्य प्राप्त नियमार्थमिदम है हे के प्रयोग में दूर से संबोधन विषयक जो वाक्य उस वाक्य में है हे को ही प्लुत हो अन्य को नहीं हो। गुरोरनृतइति दूर से सम्बोधन विषयक जो वाक्य उस वाक्य घटक ऋत भिन्न अनन्त्य गुरु अथवा अपिशब्द से अन्त्य अगुरु

उसको प्लुत हो विकल्प करके। देवदत्त शब्दे क्रमेण प्लुतो भवति दकार घटक एकारस्यो दकारवृस्य रकारस्य तकारवृत्ते रकारस्य चप्लुतः। गुरोः किमितिगुरु क्यों कहा। वकारात्पर० वकार से पर अकार को प्लुत न हो इस वास्ते गुरु कहा। अनृतःकिम् ऋत् भिन्न क्यों कहा। कृष्ण ३ यहां कृ में ऋ को प्लुत नहीं हुआ। ष्ण में अकार को दूराद्धूतेच से हो गया। एकैक मिति। एकस्मिन् प्रयोगे एकस्यैव प्लुतो भवति सर्वेषां नेति। एकग्रहण पर्यायार्थ है। अर्थात् क्रम बोधक है। एक प्रयोग में एक को ही प्लुत हो दोको अथवा तीनों को नहीं हो इस वास्ते है यहां प्राचा इसका योग विभाग करना 'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्ये कैकस्य, एक सूत्र है। और प्राचाम् यह द्वितीय सूत्र है पूर्व सूत्र का तो वही अर्थ करना जो कर चुके है। और प्राचाम् इसका यह अर्थ करना कि पांच सूत्रों से जो प्लुत होता है वह विकल्प करके होता है तेन सर्व०। इससे सम्पूर्ण प्लुत विकल्प करके होंगे। अप्लुतवादिति० इससे सूत्र में उपस्थित शब्द से लौकिक प्रयोग का ग्रहण है क्योंकि उपस्थित लौकिक प्रयोग ही है तद्भिन्न अनुपस्थित वैदिक प्रयोग है इति शब्द भाष्यकृत व्याख्यान से लब्ध हुआ है भाष्यकारने ही इति शब्द का अध्याहार किया है इस वास्ते वृत्ति मेंइति शब्द, पढ़ाउपस्थितका अर्थ है अनार्ष इति शब्द अर्थात् वेदभिन्न इति शब्द परे रहते प्लुत अप्लुतवत् हो। भाव यह है कि प्लुतभी बना रहे और सन्धि भी हो जाय यह अप्लुतवत् का अर्थ है। इसी वास्ते कहते हैं-अप्लुत कार्यमिति० अप्लुत को जो यणादि कार्य होते हैं वे कार्य हों। सुश्लोक ३ इति यहां ककार वृत्तिस्थ अकार को दूराद्धूते च से त होगया। फिर अप्लुतवदुपस्थिते

इसने प्लुत को अप्लुतवत् कर दिया तो 'प्लुत प्रगृह्या अचिनित्यम् से प्रकृतिभाव नहीं हुआ। फिर आद्गुणः गुण होकर–सुश्लोकेति यह रूप बना। सुश्लोक ३ इति यह प्लुत करके वाक्य दिखाया है। और सुश्लोकेति यह अप्लुतवद् भाव करके दिखाया है। विकल्प पक्ष का नहीं है। शंका–वत्किमिति० अप्लुतवदुपस्थिते इस सूत्र में "वत्,, क्यों कहा–अप्लुत उपस्थिते ऐसा सूत्र करेंगे। क्योंकि इसमें २ मात्रा का लाघव है–यदि अप्लुतवत् नहीं करेंगे तो सूत्र का क्या अर्थ होगा अप्लुत शब्द से प्लुत शब्द का आध्याहार करेंगे तो–यह अर्थ होगा कि वेद भिन्न इति शब्द परे रहते प्लुत अप्लुत हो–अर्थात् प्लुत की व्यावृत्ति हो जाय प्लुत की व्यावृत्ति होने से यणादि कार्य हों ऐसा करने से भी कार्य चल जायगा। उत्तर। यदि वत् नहीं करोगे तो क्या अर्थ होगा कि प्लुत अप्लुत हो–तब तो अग्नि शब्द से औ विभक्ति किया अग्नि औ इस अवस्था में प्रथमयोः पूर्वसवर्णः इस करके दीर्घ होगया तो अग्नी इति ऐसा हुआ–अब यहां दूराद्धूते च से अग्नी के इकार को प्लुत किया–और ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् इससे अग्नी की प्रगृह्य संज्ञा की अब अप्लुत वदुपस्थिते इस करके प्लुत को अप्लुत किया–अर्थात् प्लुत की व्यावृति की। अब सन्धि तो होगी नहीं क्योंकि–ईदूदेद् द्विवचनं० करके प्रगृह्य संज्ञा कर दिया गया है–फिर क्या होगा प्लुत का श्रवण नहीं होगा और राद्धान्त में प्लुत का श्रवण होता है–यह दोष आवेगा। इस वास्ते सूत्र में वत् ग्रहण किया। इसी बात को लिखते हैं अप्लुत इत्युक्ते सति अप्लुत ऐसा सूत्र में कहने से अप्लुत का ही विधान करेगा। और प्लुतका निषेध कर देगा। तथा चेति० दर्शयति दिखाते हैं जहां प्रगृह्याश्रय प्रकृति

भाव होगा वहां प्लुत का श्रवण नहीं होगा (अग्नी ३ इति यहां पर) इस वास्ते वत् किया। शंका–अग्नी इति यहां पर जब दूराद्धूते च करके प्लुत हो गया फिर ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् इससे प्रगृह्य संज्ञा प्राप्त रही तब उस प्रगृह्य संज्ञा को बाध कर परत्वात् अप्लुतवदुपस्थिते इस करके अप्लुतवद्भाव हो कर सन्धि होना चाहिये। उत्तर। अप्लुत वदुपस्थिते यह इति परे मानता है इस वास्ते पर निमित्तकत्वं बहिरंगत्वम्–इससे अप्लुत वदुपस्थिते यह बहिरंग हुआ–और ईदूदेद्द्विवचनम् यह वर्ण मात्रा की अपेक्षा करता है इस वास्ते अन्तरंग है–तो, असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे इससे अन्तरंगत्वात्–ईदूदेद्द्विवचनं से प्रगृह्य संज्ञा होगी अप्लुतवत् नहीं होगा इस वास्ते दोष नहीं हैं। शंका। भाष्य में तो अप्लुतकार्य नहीं हो ऐसा लिखा है फिर आप भाष्य से विरुद्ध अप्लुतवत् हो ऐसा अर्थ क्यों करते हो। उत्तर–भाष्यकार ने फलित अर्थ लिखा है उन का भी यही तात्पर्य है ॥ ई ३ चाक्रवर्मणस्येति–यहां चाक्रवर्मण ऋषि है। प्लुत ईकार से अच्परे रहते अप्लुतवद्भाव विकल्प करके हो। विकल्प अर्थ–चाक्रवर्मणस्य का है। चिनु ३ ही ३ इति यहां चिनु क्रिया है–ही ३ यह अव्यय है। यहां हि के इकार को अनन्तस्यापि प्रश्नाख्यानयोः। इससे प्लुत हो गया। तब ई ३ चाक्रवर्मणस्य इसने प्लुत को अप्लुतवत् कर दिया–तो अकः सवर्णे दीर्घः इससे दीर्घ हो गया। विकल्प करने से चिनुहीदम्–पक्षे–चिनुही ३ इदम् एवं चिनुही ३ इति–चिनुहीति यहां भी जानना। उभयत्र विभाषेयमिति यह उभयत्र विभाषा है अर्थात् यहां चिनुहीति में 'अप्लुतवदुप०, इससे नित्य प्राप्त था और चिनु हीदम् यहां अप्राप्त था इस वास्ते यह प्राप्त विभाषा हुआ। "ईदूदेद्

द्विवचनं०" इस सूत्रमें ईत् ऊत् एत् विशेषण और द्विवचन विश्वेय है 'येन विधिस्त०, करके तदन्तविधि हो गई तो यह अर्थ हुआ कि ईदन्त ऊदन्त एदन्त द्विवचन प्रगृह्य संज्ञक हों। तदन्त विधि का फल पचेते इमौ इत्यादि में है। यहां पच् आताम् शप् प्रत्यय 'आतोङितः" 'आद्गुणः, टित् आत्मने इति एत्वे पचेते इति रूपं यहां एदन्त है और द्विवचन है इस वास्ते प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। इसी वास्ते तदन्त विधि की है। 'हरी एतौ ,इत्यादिकों में फल नहीं है क्योंकि परादिवद्भावेन ईकारादिकों को द्विवचन मान कर ईत् ऊत् एत् रूप द्विवचन प्रगृह्य संज्ञक हों ऐसा अर्थ करने पर भी कार्य हो सकता है द्विवचन शब्द में तदन्त विधि नहीं होती है, क्योंकि "संज्ञा विधौ प्रत्यय ग्रहण तदन्तग्रहणञ्नेति,, संज्ञा विधि में प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त ग्रहण नहीं होता है इससे तदन्त विधि का निषेध होगया इस परिभाषा में ज्ञापक "सुपतिङन्त०,, में अन्त ग्रहण ही है। तदन्त विधि का निषेध होने से 'वध्वोरगारम्' 'वध्वगारम्, इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो गये, अन्यथा यहाँ भी प्रत्यय लक्षण से षष्ठी का द्विवचन ओस् मान कर प्रगृह्य संज्ञा हो जायगी इस वास्ते तदन्त विधि का निषेध करना। हरी एतौ में ईदन्त तो स्वयं ही है परन्तु द्विवचन परादिवद् भाव से मान कर प्रगृह्य संज्ञा करना। मणीव इति यहां कोई मणी इस को द्विवचनान्त समझता था और आगे इव का छेद करता था और प्रगृह्य संज्ञा के निषेधार्थ 'मणीवादीनां, प्रतिषेधो वक्तव्यः, ऐसा वार्त्तिक पढ़ता था सो वार्त्तिक करना अयुक्त है क्योंकि भाष्यादिकों में यह वार्तिक नहीं मिलता है इस वास्ते ग्रन्थकार कहते हैं 'मणीवोष्ट्रस्येति, मणीव यहां इवका छेद नहीं है किंतु इव अर्थ में व

अथवा वा शब्द है। इसी वास्ते मेदिनी कोषकार लिखते हैं "वं प्रचेतसि जानीयात् इवार्थे च तदव्ययम ,, " ववा यथा तथैवेवं साम्ये,, इत्यमरः। इस वास्ते 'मणीवोष्ट्रस्य लम्बते, यह साधु हो गया।

"अदसोमात् ,, इसमें ईत् ऊत् की अनुवृत्ति करना एत् की नहीं क्योंकि मकार से परे ऐत असम्भ है अदस् शब्द के मकार से परे ईत् ऊत् प्रगृह्य संज्ञक हों अमीईशा यहां अमी यह अदस् शब्द के जस् का प्रयोग है द्विवचन नहीं है इस वास्ते पृथक् सूत्र किया। अमू आसाते इति यहां अदस् शब्द से औ विभक्ति किया सकार को 'त्यदादीनामः, से आकर 'अदसोसेर्दा०, से ऊत्व मत्व होकर अमू बना है। शं० यहां "ईदूदे द्वि०,, इसी सूत्र करके प्रगृह्य संज्ञा हो जाती फिर 'अदसोमात्, में ऊत् की अनुवृत्ति क्यों की। उ० यहां अमू यह पुलिंग का उदाहरण है नपुंसक तथा स्त्री लिंग का नहीं है क्योंकि नपुंसक और स्त्री लिङ्ग में 'अदे, बन कर फिर " अदसो से ,, से एका ऊ और ' द का म , होता है तब तो मूत्व को असिद्धहोने से एदन्त द्विवचन मिलता है तो "ईदूदेद्विचि०,, से प्रगृह्य संज्ञा हो सकती है। परन्तु पुलिङ्ग में अदौ बना कर अदसो० इस सूत्र में औ का उ और द का म होता है तब तो पूर्व सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा नहीं हो सकती है क्योंकि सूत्र को असिद्ध मानने पर भी अदौ दृष्ट होगा इस वास्ते ईदूदे द्विवचनं इस सूत्र की प्राप्ति नहीं है इसी वास्ते सूत्र कार रामकृष्णौ यह पुलिंग शब्द अमू के साथ प्रयुक्त करते हैं कि अमू भी पुलिंग है। शंका। अदसो मात् कि दृष्टि में मूत्व असिद्ध है फिर अदसो मात् कैसे लगा॥ उ०॥ आरम्भ सामर्थ्य से मूत्व असिद्ध नहीं होता है॥प्र०॥ 'अदसो मात्, इस सूत्र में

मात् ग्रहण क्यों किया अदसः ऐसा ही सूत्र करेंगे(उत्तर) मात् ग्रहण नहीं करोगे तो ईत् ऊत एत् तीनों की अनुवृत्ति आजायगी तब तो अदस् शब्द से अकच् प्रत्यय किया और अदसो सेर्दो० इससे 'द, को 'म, और अ को उ अमुक जस् प्रत्यय शी आदेश आद-गुणः' अमुके ऐसा रूप बना अब अत्र के साथ सम्बन्ध किया तो अमुके अत्र इस अवस्था में अदस् शब्द से परे एकार है तो प्रगृह्य संज्ञा हो जायगी पूर्व रूप नहीं होगा इस वास्ते मात् ग्रहण करना । प्र० । मात् ग्रहण करने पर भी एकार की अनुवृत्ति क्यों नहीं होती उ० । मकार से परे एकार असम्भव है कहीं मिलता ही नहीं है इस वास्ते सिद्धान्त में एकार की अनुवृत्ति नहीं होती ।प्र०। मात् ग्रहणाभाव में एकार की अनुवत्ति आने पर भी अमु-के अत्र यहां दोष नहीं है क्योंकि यह तो अमुक शब्द है अदस् शब्द ही नहीं ॥ उत्तर ॥ यन्मध्ये पततितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते । जो जिसके मध्य में पतित होता है उसका उसी शब्द से ग्रहण होता है । इस वास्ते अदस् शब्द से अमुक शब्द भी लिया जायगा इस वास्ते एकार की अनुवृत्ति न हो एत दर्थ मात् ग्रहण है । इस वास्ते मूल कार लिखते हैं अस-तीति मात् ग्रहणो असतिमात् ग्रहण नहीं करोगे तो एकार की अनुवृत्ति आजावेगी ' शे , यह भी प्रगृह्य संज्ञक होता है यद्यपि यह छन्द में लगता है तथापि प्रकरणवस यहां लिखा । अस्मे इति भ्यस् स्थाने सुपासु० इति शे आदेशे अस्मे इति रूपम् । निपात एकाजनाङिति । एकश्चासौ अच् इति एकाच् इति समासः । न आङ् अनाङ् । एकाच् रूप निपात आङ् को वर्ज कर प्रगृह्य संज्ञक हो । एक आङ् दूसरा आ तो यह सुभक्ति आङ् को छोड़कर प्रगृह्य संज्ञा करता है इस वास्ते कहते हैं अनाङित्युक्ते रिति अनाङ

ऐसा कहने से अङिति आकार प्रगृह्य संज्ञक होता है। आ एवं नुमन्यसे प्रथम नहीं मानते थे इदानीं आएवंनुमन्यसे अब इस प्रकार मानते हो–यह वाक्य है। आएवंकिलतत् यह वही पुरुष है जो प्रथम देखा था, यह स्मरण है। सूत्रङित् आङ् को वज्र कर प्रगृह्य संज्ञा करता है। इस वास्ते कहते हैं। ङित्तु इति–ङित् आङ् तो प्रगृह्य संज्ञक नहीं होता है आउष्णम् आद्गुणः। ओष्णम्–इसका अर्थ क्या है ईषदुष्णेम् थोड़े गर्म अर्थ का बोधक आङ् है। हमे कैसे ज्ञात होगा कि यह आङ् है और यह आ है–क्यों कि–आङ के ङ की इत्संज्ञा होकर आ रह जाता है–इस वास्ते आङ आ में भेद कैसे ज्ञात होगा। इस बात को कहते हैं इषदर्थे इति–थोड़े अर्थ में क्रिया के योग में, मर्यादा में और अभि विधि में आ कोडित जानना। वाक्य में और स्मरण में अङित् जानना। 'ओत' ओदन्त निपात प्रगृह्य संज्ञक हो।

"सम्बुद्धौ" यह निमित्त सप्तम्यन्त है। सम्बुद्धि निमित्तक ओकार प्रगृह्य संज्ञक हो अवैदिक इति शब्द परे रहते विकल्प करके। अनार्ष इति कि। यदि वेद भिन्न नहीं कहते तो ब्रह्म बन्धो इत्यब्रवीत यहां बन्धो यह सम्बुद्धि निमित्तक ओकार है इसकी भी प्रगृह्य संज्ञा हो जाती इस वास्ते अनार्ष कहा यह आर्ष प्रयोग है। "उञः"। उञ की प्रगृह्य संज्ञा हो अवैदिक इति शब्द परे रहते विकल्प करके। पक्षे "उँ" उञ को इति शब्द परे रहते अनुनासिक और प्रगृह्य संज्ञक उँ आदेश हो विकल्प करके। पक्षे इको यणचि इति यण्। उदाहरण त्रयं भवति उ इति–उँ इति—विति। "मय उञो वोवा" से परे उ अ को व आदेश हो विक

करके अच् परे रहते। किमु + उक्तम्। अत्र "इकोयणचि" इति सूत्रं बाधित्वा " निपात एकाजनाङ् " इत्यनेन प्रगृह्य संज्ञा प्राप्ता तदर्थमस्यारम्भ इति। एकस्मिन्पक्षे अनेन वकारः द्वितीय पक्षे प्रगृह्य संज्ञा। शं०। किंवुक्तम् यहां हल् परे वकार है- इस वास्ते 'मोऽनुस्वारः,से अनुस्वार क्यों नहीं होताहै। उ० नत्वस्यासिद्धत्वान्नानुस्वारः 'मोनुस्वारः" सूत्र की दृष्टि में 'मय उञो वो वा, यह सूत्र त्रिपादी होने से असिद्ध है इस वास्ते अनुस्वार नहीं होता है। अर्थात् हल् परे नहीं है अच् परे है। अन्यथा 'इको यणचि, इत्यस्या नन्तरमस्य पाठेन यणो ऽनुवृत्यावेव सिद्धे वत्व विधानस्य वैयर्थ्य स्यादिति। अर्थात् 'इकोयणचि, इस सूत्र के अनन्तर 'मय उञो वा, ऐसा सूत्र करके यण् की अनु वृत्ति करेंगे और यह अर्थ करेंगे कि मय् से परे उञ् को यण् हो विकल्प करके अच् परे रहते तब भी कार्य चल जायगा अर्थात् सपाद सप्ताध्यायी में पाठ करने से लाघव था त्रिपादी में गौरव रूप पाठ इसी वास्ते किया है कि अनुस्वार नहीं हो ? वास्तविक में तो यह बात है कि त्रिपादी में पाठ का फल प्रत्यङ्डास्ते इत्यादि में वत्व को असिद्ध होने से उकार रूप अच् परे है इस वास्ते 'ङमो ह्रस्वा दचि" इस करके ङमुट् होगया यह त्रिपादिक में करने का फल है। किंवुक्तम् में तो सन्निपात परिभाषा से ही अनुस्वार नहीं होगा।

"ईदूतौ च स० " सप्तम्यर्थ मात्र में (पर्यवसन्न) जिन्हों की समाप्ति हो गई है, ऐसे ईदन्त ऊदन्त शब्द प्रगृह्य संज्ञक हों। अर्थात् केवल सप्तम्यर्थ मात्र में वर्त्तमान ईदन्त ऊदन्त शब्द प्रगृह्य संज्ञक हों। सोमो गौरी इति यहां गौरी ङि अधिश्रितः ऐसा था

"सुपां सु०" इससे ङि का लोप होगया। "यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी" जो शेष रहता है वह लुप्यमान के अर्थ को भी कहता है यहां ङि का लोप होकर शेष गौरी है तो गौरी यह अधिकरण अर्थ को कहेगा इस वास्ते प्रगृह्य संज्ञा हो गई वण् नहीं हुआ।

इसी प्रकार तनू ङि इति में भी जानना॥ "ईदूतौ च सप्तम्यर्थे" इस सूत्र की जगह लाघवार्थ "ईदूतौ सप्तमी" ऐसा सूत्र करेंगे और सप्तमी यह प्रत्यय है "प्रत्यय ग्रहणेतदन्त ग्रहणम्" इससे तदन्त विधि हो जायगी तो क्या अर्थ होगा ईदन्त ऊदन्त जो सप्तम्यन्त सो प्रगृह्य संज्ञक हों यह अर्थ करने से सोमो गौरी अधिश्रितः मामकी तनू इति इत्यादिकों में प्रत्यय लक्षण से सप्तम्यन्त मानेंगे और ईदन्त ऊदन्त रूपस्वयमेव है-इस वास्ते प्रगृह्य संज्ञा हो जायगी। फिर सूत्र में अर्थ ग्रहण क्यों किया-इस वास्ते कहते हैं 'अर्थ ग्रहणं किम्, अर्थ ग्रहण क्यों किया। यह प्रश्न हुआ। उत्तर करने वाले का यह आशय है अर्थ ग्रहण नहीं करेंगे तो 'संज्ञा विधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति"। संज्ञा विधि में प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त ग्रहण नहीं होता है। इससे निषेध हो कर तदन्त विधि नहीं होगी तो यह अर्थ होगा कि ईकार ऊकार रूपा जो सप्तमी सो प्रगृह्य संज्ञक हो। इसके करने में यथी ङि आस्ते यहां पर ङकार की इत् संज्ञा हो गई और "अकः सवर्णे" से दीर्घ होकर यथी आस्ते ऐसा रूप बना अब यहां एकादेश को परादिवद्भाव से ईकार रूपा सप्तमी है-तो यहां पर भी प्रगृह्य संज्ञा हो जायगी।

'सोम गौरी अधिश्रितः' इत्यादिकोंमें नहीं होगी क्योंकि सप्तमी का तो लोप हो गया ईकार रूपा सप्तमी नहीं है इस वास्ते अर्थ ग्रहण करना चाहिये। कहो कि प्रत्ययलक्षणादेव सप्तमी मानेंगे तब भी ईकार रूपा सप्तमी नहीं है किन्तु सप्तम्यन्त है जो ईकार है सो सप्तमी का नहीं है जो प्रत्यय लक्षणेन सप्तमी मानते हैं सो ईकार रूपा नहीं है। 'तत्रापि सरसि यदि' इस भाष्य से ययी पपी इत्यादि प्रयोगों का अनभिधान होने से सूत्र व्यर्थ हो जायगा इस वास्ते सूत्रारम्भ सामर्थ्य से "संज्ञा विधौ प्रत्यय ग्रहणे तदन्त विधिर्नास्ति" यह परिभाषा नहीं लगेगी तो तदन्त विधि हो जायगी पुनः अर्थ ग्रहण क्यों किया। अथवा कदाचित् ईकारांश में सूत्र चरितार्थ भी हो जाय परन्तु ऊकारांश में व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि ऊकार रूपा सप्तमी कहीं नहीं है इस वास्ते ग्रहण सामर्थ्य से तदन्त विधि हो जायगी "संज्ञा विधौ" परिभाषा नहीं लगेगी। अथवा 'ईदूदेद्विः०, "अदसोमात्" "ईदूतौ च स०,, इन तीनों के स्थान पर ऐसे सूत्र करेंगे " ईदूतौ सप्तमी प्रगृह्यम्" "अदसः" "एकद्विवचनम्" ऐसा न्यास करने से ही सर्वत्र निर्वाह हो जायगा और लाघव भी है फिर आचार्य ने गुरुभूत न्यास क्यों किया इस गुरुभूत न्यास करने से हम क्या जानते हैं कि "संज्ञा विधौ प्रत्ययः" यह परिभाषा नहीं लगती है तो तदन्त विधि हो जायगी ईदन्त ऊदन्त जो सप्तम्यन्त सो प्रगृह्य संज्ञक हों ऐसा अर्थ होगा तो सोमो गौरी अधिश्रितः मामकी लूनूइति इत्यादि सिद्ध हो ही जायंगे फिर अर्थ ग्रहण क्यों किया। यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि सप्तम्यर्थ मात्र में वर्तमान ईकारान्त ऊकारान्त शब्द हों सभी प्रगृह्य संज्ञा हो "वृत्तादर्थान्तरोप संक्रान्ते मा भूत् इति,,

अर्थान्तर में उपसंक्रान्त जो समास रूपा वृत्ति है उसकी प्रगृह्य संज्ञा न हो । अर्थात् "कृत्तद्धित समासैकशेष सनाद्यन्त धातु रूपाः पञ्च वृतयः" यह पांच वृत्ति हैं इनमें समास भी वृत्ति है वृत्ति क्या होती है "परार्थाभिधानं वृत्तिः,, जो दूसरे के और अपने अर्थ को खिचड़ी बना देवे वही वृत्ति है इसी वास्ते दर्पण-कार कहते हैं "समासे खलु भिन्नैव शक्तिः पंकज लक्षणा,,समास में शब्दों की वृत्ति अर्थात् प्रवृत्ति विचित्र रूपा हो जाती है जैसे पंकजः यहां पंकात् जातः पंकजः जो कीचड़ से पैदा हो वही पंकज होता है कीचड़ से तो कीड़े पैदा होते हैं उन्हींका नाम पंकज होना चाहिये ।परन्तु यहां कमल का नाम है यह कैसे इस वास्ते कहना कि यह शक्ति से कमल को कहता है । इसी प्रकार वाप्यां अश्वः वाप्यश्वः यहां पर भी वाप्यधिकरणक अश्वः यह वाप्यश्वः का अर्थ है । यहाँ केवल सप्तम्यर्थ मात्र में वर्तमान वापी शब्द नहीं है किन्तु वाप्यधिकरणक अश्वः इस अर्थ में है इस वास्ते अर्थान्तर में उपसंक्रान्त यानी गमन करने वाली वृत्ति हो गयी केवल वाप्यधिकरणक अर्थ नहीं रहा जब वाप्यधिकरणक अर्थ होगा तभी प्रगृह्य संज्ञा होगी अन्यथा नहीं इस वास्ते अर्थ ग्रहण किया है । नोटः—अर्थान्तरोपसंक्रान्ते माभूदिति ,, दूसरे अर्थ में उपसंक्रान्त याने गमन करने वाली जो वृत्ति समासादि है उन्हों में नहीं हो यह तात्पर्य है । शं० । सोमो गौरी अधिश्रितः इत्यादिकों में हम विभक्ति का लोप नहीं करेंगे किन्तु 'सुपांसुलुक्' से पूर्व सवर्ण करेंगे । तबतो परादिवद्भावेन ईकार रूपा सप्तमी मिल जावेगी । सूत्र भी चरितार्थ हो जायगा फिर सूत्रारम्भ सामर्थ्य से तदन्त विधि कैसे । उ० ।यहां पूर्व सवर्ण नहीं हो सकता क्योंकि पूर्व सवर्ण को बाध कर परत्वात् आङ्गत्वात् को

अात् औङ् आटादि हो जायंगे। 'अणो प्रगृह्यस्येति,। अवसान में वर्त्तमान प्रगृह्य संज्ञक अण् को अनुनासिक हो विकल्प करके। इसमें अण् पूर्वणकार से लेना प्रगृह्य पर्युदास होने से। क्योंकि अच् ही पढ़ देते हल् की प्रगृह्य संज्ञा होती ही नहीं। 'प्रगृह्यस्येति किम्' प्रगृह्य क्यों कहा अग्नी यहाँ 'ईदूदेद्द्विवच०, से प्रगृह्य संज्ञा है इस वास्ते यहां अनुनासिक नहीं हो अतः अप्रगृह्य कहना। इत्यच् सन्धिः यहां चोः कुः से कुत्व नहीं करना अल्पाच्तरम् इत्यादि निर्देश से अथवा सन्देह हो जाता इस वास्ते सन्धि नहीं की।

॥ इत्यच्संधिः ॥

——:०:——

"अथ हल् सन्धि प्रकरणम्"

"स्तोःश्चुनाश्चुः"। स्च तुश्चेति समाहार द्वन्द्वः। सौत्रत्वात् पुंस्त्वम्। श्च च तुश्च तेन श्चुना। सकार तवर्ग को शकार चवर्ग के योग में शकार चवर्ग हों। यहां स्थानी और आदेश का यथा संख्य है। अर्थात् सकार को शकार होता है और तवर्ग को चवर्ग होता है योग चाहे शकारका हो अथवा चवर्ग का हो। निमित्त के साथ यथा संख्य नहीं है। यदि निमित्त के साथ होता तो "शात् यह निषेध सूत्र ही व्यर्थ हो जाता। इस वास्ते जानते हैं कि स्थानी और आदेश का यथा संख्य है निमित्त का नहीं। यहां योग का संयोग अर्थ है अर्थात् शकार चवर्ग का संयोग होना चाहिये। हरिश्शेते यहां "वा शरि' से पक्ष में विसर्ग भी होता है। हरिः शेते बनता है।

"शात्" शकार से परे तवर्ग को चवर्ग नहीं हो। प्रश्न इति। यहां 'प्रश्ने चासन्न काले" इस ज्ञापक से र को सम्प्रसारण नहीं होता है।

"ष्टुनाष्टुः" यहा स्तोः की अनुवृत्ति आती है सकार तवर्ग को षकार टवर्ग के योगमें षकार टवर्ग हों।

सकार को षकार हो तवर्ग को टवर्ग हो। यहां भी पूर्व वत् स्थानी आदेश का यथा संख्य है, निमित्त आदेश का नहीं 'तोःषि' इस निषेध से। पेष्टा इति स्थितिः। बत् टीका—न पदान्ताट्टो रनामिति। अनाम्-यह लुप्तषष्ठी—पद है। पदान्त टवर्गसे परे नाम भिन्न सकार तवर्ग को षकार टवर्ग न हों। पदान्त क्यों कहा ईट् ते—लटि रूपम्—अत्र तकार वृत्ति एकारे पदान्तत्वमस्ति अतः ष्टुत्वमेति। षट् सन्तः षट् ते— यहां दो पद हैं—यहां 'ष्टुनाष्टुः, से स का ष और त का ट प्राप्त था, इसने निषेध किया। शंका (एक योग निर्दिष्टानां सहवा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः) परस्पर अन्वितार्थक पदों की साथ में ही प्रवृत्ति होती है और साथ में ही निवृत्ति होती है, इस परिभाषा के बल से पूर्व पठित 'ष्टुनाष्टुः' इस सूत्र से ष्टु की अनुवृत्ति करके पदान्त षकार टवर्ग से परे सकार तवर्ग को षकार टवर्ग नहीं हो ऐसा अर्थ करने पर भी निर्वाह हो जायगा पुनः सूत्र में टोः ग्रहण क्यों किया। उ०—सर्पिस् शब्द से तमप् प्रत्यय किया सर्पिस् तमप् ऐसा हुआ यहां 'ह्रस्वान्तादौ तद्धिते, इस से सकार को षकार किया सर्पिष् तमम् ऐसा हुआ अब यहां पर टोः ग्रहण करते हैं तबतो 'नपदान्ताट्टोराम्, निषेध नहीं होता है क्यों कि टवर्ग से परे नहीं हैं अब षकार टवर्ग दोनों से परेनिषेध करेगा तो यहां भी

तवर्ग का टवर्ग नहीं होगा इस वास्ते टोः ग्रहण करना चाहिये, जब टोः करते हैं तब निषेध नहीं हो सकता है क्योंकि टवर्ग से परे नहीं है। शंका। 'सर्पिष्टमम्' में तो दोष नहीं होगाक्योंकि जहाँ जहां पदान्त में षकार मिलेगा वहां २ "झलांजशोन्ते" से षकार का डकार हो जायगा तब तो सर्पिष्टमम् यह प्रयोग ही ठीक नहीं। उत्तर। सर्पिष्टमम् यहां 'झलांजशोन्ते,से ष का ड नहीं होता है क्योंकि 'हस्वान्तादौ तद्धिते, इस सूत्र से विहित जो षकार है वह जश्त्व की दृष्टि में असिद्ध है अर्थात् 'झलां जशोऽन्ते, को दन्त्यसकार दीखता है इस वास्ते षकार का डकार नहीं होगा तो यहां भी निषेध हो जायगा इस वास्ते टोः ग्रहण करना चाहिये। शंका। "झलां जशोऽन्ते"की दृष्टिमें 'ह्रस्वान्तादौतद्धिते' से विहित षकार असिद्ध है तो स को 'झलां जशोऽन्ते, दकार कर देगा तब भी पदान्त में षकार नहीं मिलेगा, फिर टोः ग्रहण क्यों किया। उत्तर—यहां सकार का दकार नहीं हो सकता है क्योंकि 'झलां-जशोऽन्ते' करके जो स का द पावेगा "अर्थात् जश्त्व"उस जश्त्व को बाधकर 'ससजुषोरुः, करके रु पावेगा और रुत्व विधायक को बाध कर 'ह्रस्वान्तादौ तद्धिते, से षकार पावेगा और 'ह्रस्वान्तादौ तद्धिते, इससे विहित षकार को असिद्ध होकर स का'झलां ज०, करके द पावेगा, फिर रुत्व फिर रुत्व को बाधकर षत्व फिर षत्व को डत्व फिर डत्व को असिद्ध होनेसे स का द फिर द को रुत्व इस प्रकार चक्रकापत्ति दोष आवेगा-इस वास्ते 'झलां जशोन्ते' नहीं लगेगा तो सर्पिष्टमम् ऐसाही रूप बनेगा यहां 'न पदान्ताद्टोरनाम्' इससे षकार से परे ष्टुत्व का निषेध नहीं हो इस वास्ते टोः ग्रहण करना चाहिये। शं०। 'क्वचिदेकदेशो प्यनुवर्तते, इस न्यायसे केवल टोः की अनुवृत्ति करके और उसे पंचम्यन्त मान कर कार्य हो

जायगा फिर टोः ग्रहण क्यों किया। उत्तर "तोःषि" इस सूत्र में तोः ग्रहण सामर्थ्य से यह न्याय यहां नहीं लगता है अन्यथा-स्तोः श्चु नाश्चुः से तोः ले आते फिर तोः ग्रहण ही व्यर्थ हो जाता इस वास्ते टोः ग्रहण करना। सूत्रकारस्य न्यूनतां दर्शयति अनाम्नवति इति। नामभिन्न नवति भिन्न नगरी भिन्न ष्टुत्वका प्रतिषेध कहना। षष् नाम् झलांजशोऽन्ते, इति षकारस्य डत्वम् प्रत्यये भाषायामिति डकारस्य णकारः षण् ण-वतिः इत्यत्र यरोनुना० इति विकल्पेन णत्वम्। 'तोःषि, तवर्ग को षकार परे रहते ष्टुत्व नहीं हो॥ 'झलां जशोऽन्ते, पदान्त में झलों को जश् हो। यरो० पदान्त यर् को अनुनासिक परे रहते अनुनासिक हो विकल्प करके।

एतद् मुरारिः अत्रदकारस्य नकारे एतन्मुरारिः। शंका—चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुखः। यहां 'प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणम्, से अन्त वर्तिनी विभक्ति मानकर 'राजपुरुष' के समान पूर्व पद की पद संज्ञा होने पर 'यरो नुनासिके ऽनुनासिको वोवा, इस सूत्र से रकारको अनुनासिक ञमङणन पाये तब कौन हो (स्थाने न्तरतमः) अनेक वर्णों की प्राप्ति रहते सदृश-तम आदेश हो तो रेफ मूर्धा स्थानिक और अर्ध मात्रिक है इसके स्थान में कौन होगा जो मूर्द्धा स्थानिक और अर्द्ध मात्रिक होगा सो ही आदेश होगा, क्योंकि 'स्थानेऽन्तरमः, इस सूत्रमें जब प्रथमान्त पाठ है तब आदेश तो प्रधान है और स्थानी अप्रधान है इस वास्ते स्थानी जो रेफ है यह आदेश जो अनुनासिक है उन्हीं में जाकर अपने सदृश वर्ण की खोज करेगा, तो र का सदृश अनुनासिकों में कौन है, णकार इस वास्ते णकार होना चाहिये।

क्यों कि णकार मूर्धा स्थानिक है'। और अर्ध मात्रिक है इस वास्ते 'चतुण् मुखः, होना चाहिये चतुर्मुखः कैसा ? उत्तर– 'स्थाने ऽन्तरतमः उरण् र परः, इस प्रकार का संहिता पाठ है तब 'स्थानेऽन्तरतमः, इस सूत्र में दो प्रकार से छेद कर सकते हैं, 'स्थाने ऽन्तरतमे उरण् रपरः, यह सप्तम्यन्त छेद करके 'एचोयवा यावः,से ए का अव् और'लोपःशाकल्यस्य,से लोप करके'स्थानेऽतरन्तम उर ण् र परः, द्वितीय प्रथमान्त भी मान सकते हैं 'स्थाने ऽन्तरतम उरण् रपरः, यहां भी 'ससजुषोरुः, से सुके सकार कारु आदेश करके भोभगो० इससे रु का यकार और 'लोपः शाकल्यस्य,से लोप 'स्थाने ऽन्तरम उरणरपरः, बन सकता है अब यहां प्रथमान्त पाठमें तो पूर्व कांक्षित दोष आता है इस वास्ते सप्तम्यन्त पाठ मानेंगे तो क्या अर्थ होगा कि आदेशों का अन्तरतम अर्थात् ;सदृश स्थानी होने पर आदेश होते हैं यह अर्थ करने पर आदेश तो 'अप्रधान है, और स्थानी प्रधान है अर्थात् आदेश स्थानियोंमें आकर खोज करेगा कि मैं किस स्थानी के स्थान में हो जाऊं तब चतुर्मुखः यहां पर (यरो नुनासिके नुनासिको वा) से रेफ को अनुनासिक प्राप्त रहा-क्याकि पदान्त पर कौन है रेफ-उससे अनुनासिक परे कौन है मकार–तो रेफ को अनुनासिक होना चाहिये अनुनासिक हैं ञमङणन–यह पांच इनमें से कौन हो तब सूत्र लगा 'स्थानेऽ न्तरतमः,—आदेशों का अन्तरतम स्थानी रहते आदेश हो आदेश कौन ञमङणन इनों का अत्यन्त स्थानी कौन है टठडढण–क्योंकि ञमङणन यह सब आकर परों में खोज करेंगें कि भाई हमको अत्यन्त सदृश बतादो तब तो मूर्धास्थानिक और स्पष्ट प्रयत्न वाले वर्ण को 'स्थाने ऽन्तरतमः, बतावेगा–ऐसे स्थान प्रयत्न वाले

टठडढण ही हैं–तो टठडढण के स्थान में ही ण हो सकता है—रेफ के स्थान में नहीं। क्योंकि यर् घटक रेफ मूर्धा स्थान वाला तो है-परन्तु स्पष्ट प्रयत्न वाला नहीं है–इस वास्ते अमक्ष्णन यह रेफ के स्थान में नहीं होंगे किन्तु टठडढण इनके स्थान में ही होंगे इसी वास्ते मूलकार समाधान करता है कि'स्थान प्रयत्नाभ्यामिति०,स्थान और प्रयत्न से सादृश्य जो स्पर्श संज्ञक टठडढात्मक वर्ण हैं। षण्णाम् इत्यादि उनों में चरितार्थ जो यह अनुनासिक विधि है सो रेफ में नहीं प्रवृत्त होगी–इस वास्ते चतुर्मुखः में दोष नहीं है शंका–सप्तम्यन्त पाठ मानोगे तो–सुध्युपास्यः यह प्रयोग नहीं बनेगा-क्योंकि 'इकोयणचि,यह सूत्र-इक् के स्थानमें यण् करता है-तब तो ईकार के स्थान में चार यण् प्राप्त रहेगें–तो 'स्थानेऽन्तरतमे, यह सप्तम्यन्त पाठ वाला सूत्र कहेगा कि आदेशों के अन्तरतम स्थानी रहते आदेश हों तब यह यण् इकों में खोज करेगें कि हमारे सादृश्य कौन है–जिसके स्थान पर हम बैठें-यकार अर्धमात्रिक और तालुस्थान वाला है इस वास्ते य स्थानी जो इक् है-उनो में अर्ध मात्रिक और तालु स्थान वाले वर्ण को खोजेगा–ऐसा इकों में कौन है–किंचित् सादृश्य लेकर ह्रस्व इकार तो ह्रस्व इकार के स्थान में यण् होगा, दध्यत्रइत्यादि में। दीर्घ ई के स्थान में नहीं होगा तो सुध्युपास्यःमें दोष आवेगा–क्योंकि यहां दीर्घ ईकार है ह्रस्व नहीं है। इस वास्ते भाष्यकार ने सप्तम्यन्त पाठ का खण्डन कर दिया-तो चतुर्मुखः में फिर भी पूर्ववत् दोष आवेगा॥ उत्तर—'अनुस्वारस्य ययिपर सवर्णः, इस सूत्र में पर को लुप्तषष्ठी, पृथक् पद'मानकर,सवर्ण पदकी अनुवृत्ति 'यरो नुनासिकेनुनासिकोवा,इस सूत्रमें करेगें-तो यह अर्थ होगा कि-सवर्ण अनुनासिक हो-तबतो'चतुर्मुखः,में दोष ही नहीं क्योंकि'रेफोष्मणां सवर्णा नसन्ति,रेफ और

ऊष्माणों का कोई सादृश्य ही नहीं होता है इस वास्ते चतुर्मुखः में दोष नहीं हैं क्योंकि रेफ को कोई सवर्ण ही नहीं मिलेगा ॥ 'प्रत्यये भाषाया मिति०,पदान्त यर् को अनुनासिक प्रत्यय परे रहते नित्य अनुनासिक हो । शंका। रघुवंश काव्य में कालिदास ने 'मदो द्रप्राः ककुद् मन्तः, ऐसा पढ़ा है सो यह प्रयोग ठीक नहीं क्यों कि वहां ककुद् शब्दसे मतुप् प्रत्यय का मकार अनुनासिक परे होने से 'प्रत्यये भाषायां नित्यम् , इस वार्तिक से दकारको नकारहोकर'ककुन्मन्तः, ऐसा होना चाहिये, इस वास्ते कहते हैं 'कथं तर्हि इति०,। उत्तर 'यवादि गणे दकारोनिपातनात् , यवादि गण में दकार निपातन से किया है अर्थात् दकार का नकार नहीं किया निपातन से । किन्तु ककुद् ऐसा ही पढ़ा है इस वास्ते द,का,न,नहीं हुआ। शंका । यवादि गण में तो दकार का नकार हो ही नहीं सकता है क्योंकि वहां तो केवल ककुद् शब्द पढ़ा है ककुद् मन्तः नहीं लिखा है इस वास्ते अनुनासिक प्रत्यय परे नहीं होने से द-का-न हो नहीं सकता फिर आपका कथन ठीक नहीं । उत्तर—यदि मतुप् करने पर दकार को नकार करना इष्ट था तो गण में ककुन् ही पढ़ देते फिर गण में दकारान्त क्यों पढ़ा इस से जानते हो कि मतुप् होने पर दकार का नकार नहीं होता है । शंका । यदि गण में ककुन् पढ़ते तो यवादि गण में पाठ करना ही व्यर्थ होजाता क्योंकि यवादि गण में पाठ इस वास्ते पढ़ा है कि मयः सूत्र सेमतुप् के मकार को नकार नहीं हो यदि ककुन् पढ़ोगे तो यह मयन्त ही नहीं रहेगा पुनः यवादि गण में पाठ ही व्यर्थ है। उत्तर—हम ककुन् ऐसा नकारान्त पाठ नहीं करेंगे किन्तु ककुद् मन्तः ऐसा प्रकृति प्रत्यय विशिष्ट पाठ करेंगे यहां पर जो ककुद्मन्तः गण में पाठ किया है । तत्सामर्थ्य से दकार का नकार

नहीं होगा। शंका–यदि दकार का—नकार हो जाता तो क्या पढ़ते–ककुन्मन्तः ऐसा पढ़ते–तब भी यवादि गण में पाठ करना व्यर्थ ही हो जाता है क्योंकि झयन्त नहीं रहता तो फिर झयः सूत्र की प्राप्ति ही नहीं। पुनः यवादि गण में पाठ क्यों किया व्यर्थ ही हो जाता। इस वास्ते नकारान्त पढ़ देते यह कथन ठीक नहीं। फिर कैसे लिखा 'यवादि गणे दकारो निपातनादिति,–यह कथन ठीक नहीं है। किन्तु यह समाधान करना चाहिये कि–'तसौमत्वर्थे, इ समें तकार के पूर्व दकार ।का प्रश्लेष करेगें और संहिता पाठ में 'यचिभं तसौमत्वर्थे, ऐसा है तो दकार का'खरिच,करके तकार कर देंगे–तब तो यह अर्थ होगा दान्त तान्त और सान्त भसंज्ञक हों मत्वर्थीय प्रत्यय परे रहते–तो ककुद् मन्तःमें भी भसंज्ञा हो जायगी पदके अन्त का दकार नहीं हैं किन्तु भसंज्ञा के अन्त का है इस वास्ते दकारका नकार नहीं हुआ। शंका-तसौ यह द्विवचन कैसे बहुवचन होना चाहिये। उ०। तस का समाहार द्वन्द्वकरके फिर दकार का इतरेतर योग द्वन्द्व कर .देने से द्विवचन आगया ॥'तोर्लि, तवर्ग को लकार परे रहते पर सवर्ण हो विद्वान् लिखति अत्र नकारो ऽनुनासिक स्तस्य स्थाने लकारोपि अनुनासिक एव। 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्व स्येति०।, इस सूत्र में उद् दिशा वाचक शब्द के योग में पञ्चमी दिशा वाचक शब्द का ऊपर से अध्याहार करना चाहिये, तो दिशा वाचक दो प्रकार के शब्द है, एक पूर्व और द्वितीय पर तब इस सूत्र में दोनों का अध्याहार पाया तो क्या अर्थ होगा उदः से पूर्व जो स्थातम्भ धातु उसको पूर्व वर्ण हो अथवा उद् से परे जो स्थास्तम्भ धातु उसको पूर्व सवर्ण हो। यह दो अर्थ प्राप्त रहे इन दोनों अर्थों में आपत्ति आई यदि पूर्व अर्थ करें तो वाक् स्था उद् भवति यहांभी सूत्र लग जायगा यदि उद्से परेअ

करें तो उद् अस्थात् यहाँ अट्के व्यवधान में भी सूत्र लग जायगा इस वास्तेयह दो आपत्ति आती हैं। इस लिये 'उदः स्था०, इस सूत्र में परिभाषा सूत्र लगा 'तस्मादित्यु०, दिग्योग लक्षण पंचम्यन्त निर्देश करके विधीयमान जो कार्य्य वह अन्यवर्णों के व्यवधान रहित पर को हो-दिग्योग लक्षण पंचमी कौन (उदः) इससे क्रियमाण कार्य क्या है पर सवर्ण। वह व्यवधान रहित को हो-और पर को हो पूर्व को और व्यवधान वाले को नहीं हो। यह दो नियम उदःस्था इस सूत्र में इस परिभाषा सूत्र ने किये-इस वास्ते "उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य" का यह अर्थ हुआ कि उद् से अव्यवहित परे जो निर्दिश्य मान-स्था स्तम्भ-धातु तिनों को पूर्व सवर्ण हो-ऐसा अर्थ करने पर अट् के व्यवधानमें तथा उद् से पूर्व स्था को परसवर्ण नहीं हो सकता है। और उद्-स्थानम् यहां पूर्व सवर्ण पाया तो किसको हो तब 'अलोऽन्त्यस्य, करके अन्त्य जो आकार है उसको पाया। तब अलोऽन्त्यस्य का बाधक सूत्र लगा "आदेः परस्य" पर शब्द का नाम लेकर पर को विधान किया जो कार्य वह आदि को हो। आदि कौन सकार इस वास्ते सकार को पाया। अब पूर्व जो दकार है उसके सवर्ण पांच हैं-तथदधन इनमें से कौन हो इस वास्ते कहते हैं। 'अत्राघोषस्येति०, यहां अघोष और महा प्राण प्रयत्न वाले स को तादृश याने वैसा ही थकार होता है इस वास्ते सकार को थकार हो गया-उद् थ् थानम्-तस्य-थकारस्य "झरोझरि" इत्यनेन पाक्षिके लोपे "खरिचे ति" दकारस्य तकारे-उत्थानम्। यत्र लोपो न भवति—तत्र-उद्-थ् थानम्-अत्रापि "खरिच" इत्यनेन दकारस्य तकारे उत्थ्थानम् ॥ शंका-यहां खरिच करके थकार को तकार क्यों नहीं होता।

इस वास्ते उत्तर करते हैं 'लोपा ऽभाव पक्षे इति०, लोप के अभाव पक्षे थकार का ही श्रवण होता है खरिच करके थकार को 'चर्त्व' तकार नहीं होता है क्यों कि चर्त्व के प्रति अर्थात् खरिच की दृष्टि में 'उदः स्था स्तम्भोः, इस सूत्र विहित थकार को प्रसिद्ध होने से। कोई यह शंका करते है कि उद्स्थानम् यहां 'झलो झलि, करके सलोप हो कर भी रूप बन जायगा फिर 'उदः स्थास्तंभो०, यह सूत्र क्यों किया। उत्तर। 'झलोझलि, प्रत्ययके सकार का लोप करता है "झयो हो" झय् से परे हकार का पूर्व सवर्ण हो विकल्प करके वाक् हरिः झलां जशोन्ते इत्यनेन ककारस्य गकारे वाग् हरिः झयोहोन्य तरस्यामित्यनेन हकारस्य पूर्व सवर्णे धकारे वाग्धरिः। शंका–हकार का धकार ही क्यों हुआ पूर्व तो गकार है उसके सवर्ण से कखगघङ यह पांच वर्ण हैं इस वास्ते कहते हैं–'घोषवतो नादवत इति, घोष नाद और संवृत महाप्राण प्रयत्न वाले हकार को तादृश याने वैसा ही वर्ग का चतुर्थ घ होता है। "शश्छोटि०" पदान्त झय् से परे शकार का छकार हो अट् परे रहते विकल्प करके। तद्शिवः यहां दस्यश्चुत्वेन जकारे कृते–दकार को स्तोः श्चुनाश्चुः करके जकार किया फिर खरिच–खर् परे रहते झलों को चर् हो–इस करके जकार का चकार हो गया–फिर शश्छोटि करके श का छ होकर रूप बना यहसूत्र क्रम बोधन किया–क्योंकि 'पूर्वत्रासिद्धम्, करके यह व्यवस्था होती है। तद् श्लोकेन यहां अट् परे नहीं क्योंकि अटों में लकार नहीं है इस वास्ते वार्तिक कहते हैं–छत्वममीति० पदान्त झय् से परे श का छ हो विकल्प करके अम् परे रहते।

शंका—छत्वममीति वाच्यम्–इसमें अमि ग्रहण क्यों किया छत्वमिति वाच्यम् ऐसा वार्तिक करनेपर भी उक्त लक्ष्य बन जायगा

उत्तर–जहाँ अम् परे नहीं होगा वहां भी लग जायगा जैसे वाक् श्चयोतति–मोनुस्वारः इस सूत्र में 'हलि सर्वेषाम्' इससे हलि की अनुवृत्ति करना और पदस्य का अधिकार है तो यह अर्थ हुआ कि मान्त पद को अनुस्वार हो हल् परे रहते। शंका—मोनुस्वारः इस सूत्र में पदस्य का अधिकार क्यों किया मकार को अनुस्वारहो हल् परे रहते ऐसा अर्थ करने पर भी हरिंवन्दे इत्यादि सिद्ध हो जायंगे। उत्तर–पदस्येति किं गम्यते–पदस्य नहीं करोगे तो गम्यते यहां अपदान्त मकार को अनुस्वार होकर गंयते रूप बन जायगा और जब पदान्त कहते तब सूत्र लगता नहीं क्योंकि पद के अन्त में मकार नहीं है किन्तु मध्य में है पद तो गम्यते यह समुदाय है इसके अन्त में एकार है–इ.. वास्ते पदस्य कहना। शंका–यहां तो दोष नहीं है क्योंकि यदि 'पदान्त, और 'अपदान्त में, यह अनुस्वार कर देवे तो "नश्चापदान्तस्यझलि., यह सूत्र ही व्यर्थ हो जाय औरव्यर्थ होकर नियम करेगा 'अपदान्तस्यानुस्वार श्चेत्तर्हि झल्येव' अपदान्त मकार को अनुस्वार होय तो झल् परे रहते ही हो अन्यत्र नहीं हो तब तो गम्यते में दोष ही नहीं फिर पदस्य क्यों कहा। उत्तर–नश्च शितुक् इत्यादि उत्तर सूत्रों में अधिकारार्थ यहां किया है अन्य का कुछ फल नहीं है।

नश्चा पदान्तस्येति० अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो झल् परे रहते। झलिकिमिति। पूर्व सूत्र से हलि की अनुवृत्ति करने पर भी कार्य चल जायगा फिर झल् ग्रहण क्यों किया। उत्तर–मन्यते यहाँ भी हल् परे है इस वास्ते अनुस्वार हो जायगा इस वास्ते झलि ग्रहण किया। अनुस्वारस्येति० अनुस्वार को पर सवर्ण हो यय् परे रहते। 'ननुकुर्वन्ति इत्यत्र रषाभ्यामित्यनेनणत्वं

कुतोनेति शंकायामाह कुर्वन्ति इत्यत्रेति० कृञ् धातु से लट् तस्य स्थाने झि प्रत्यये तनादिकृञ्भ्य उरिति उ प्रत्यये सार्वधातुकधातुकयोरित्यनेनगुणे अवादेशे ककार वृत्तिरकारस्य–उकारे–ओन्तः इत्यनेन अन्ता देशे यणि च कृते कुर्वन्ति इति रूपम् ।

कुर्वन्ति यहां पर प्राप्त जो उक्त णत्व विधायक सूत्र है इसको 'नश्चा पदान्तस्य' की दृष्टि में असिद्ध होने से प्रथम नकार को अनुस्वार करना फिर ,अनुस्वारस्य ययि पर सवर्णः' इस करके पर सवर्ण करना–वह पर सवर्ण विधायक सूत्र णत्व विधायक की दृष्टि में असिद्ध है अर्थात् णत्व विधायक को अनुस्वार ही दीखता है इस वास्ते णत्व नहीं हुआ। "वा पदान्तस्य" पदान्त अनुस्वार को यय् परे रहते विकल्प करके पर सवर्ण हो। संयन्ता इत्यादिकों में अनुस्वार को पक्ष में अनुनासिक यँ वँ लँ होते हैं। मो राजि० क्विप् प्रत्ययान्त राज्धातु परे रहते सम् के मको म ही हो ॥ सम् पूर्व राज् क्विपप्रत्यय सम्राट्। 'हेमपरे०' म परो यस्मादिति बहु व्रीहिः ॥ मकार है परे जिसके ऐसा हकार परे रहते म को म ही हो विकल्प करके पक्षमें अनुस्वार होगा। 'यवल परे०, यवलाः परो यस्मादिति बहु व्रीहिः। यवल है परे जिसके ऐसा हकार परे रहते म को य व ल हो विकल्प करके। 'यथा संख्य०, समाना मनु देशो यथा संख्यं भवति–अर्थात् तुल्य सम्बन्धी विधि यथा क्रम से हो। नःपरे न। नः परो यस्मात् असौ तस्मिन् नकार है परे जिसके ऐसा हकार परे रहते म को न न हो विकल्प करके। कृणोः कुक् टुक्० यहां कृणोः इस षष्ठ्यन्त पद को देख कर 'षष्ठीस्थाने योगा, से ककार णकार के स्थान में कुक् टुक् आगम हो यह अर्थ प्राप्त था इस वास्ते इसको बाधकर 'आद्यन्तौ०

इस सूत्र ने अन्ताऽवयव यह अर्थ किया-ङकार णकार के अन्ताऽवयव को क्रम से कुक् और टुक् आगम हो विकल्प करके शर् परे रहते। कुक् टुकोरिति प्राङ् क् षष्ठः यहां 'छलांजशोन्ते,-से क् को ग् नहीं होताहै क्योंकि कुक् टुक् विधायक सूत्र 'झलाँजशोन्ते, की दृष्टि में असिद्ध है। 'चयो द्वि०, चयों को द्वितीय अक्षर हो पौष्करसादि ऋषि के मत से-कुक् पक्ष में क् ष का क्ष होता है। 'ङः सि धुट्, इस सूत्र में ङःपंचम्यन्त सि सप्तम्यन्तधुट् प्रथमान्त है अब यहाँ पर (ङः) इस पंचम्यन्त पद को देख कर 'तस्मादित्युत्तरस्य, की उपस्थिति होनी चाहिये और (सि) इस सप्तम्यन्त पद को देखकर-'तस्मिन्निति०, इस परिभाषा सूत्र की उपस्थिति होनी चाहिये तो क्या अर्थ होता ङ से परे सकार परे रहते धुट् आगम हो ऐसा ऊटपटांग अर्थ होना चाहिये इस वास्ते कहना कि-'तस्मिन्निति, इस सूत्र को बाध कर 'तस्मादित्युत्तरस्य, की उपस्थिति करना और 'सि, सप्तम्यन्त को षष्ठी मान लेना इसी वास्ते कहते हैं-'उभय निर्देशे पंचमी निर्देशो बलीयान्, जहां पंचम्यन्त और सप्तम्यन्त उभय निर्देश हों वहां पंचम्यन्त निर्देश बलवान् होता है इस वास्ते यह अर्थ करना कि ङकार से परे सकार को धुट् आगम हो विकल्प करके। शंका-सस्य षष्ठी ही कर देते इतना बखेड़ा क्यों किया। उत्तर 'सि, कहने में लाघव है इस वास्ते ऐसा किया। षट्त् सन्त इति धुटके धकार को 'खरि च, करके त होगया है। अब यहां 'चयो द्वितीया०, करके तकार को थकार नहीं होता है। क्योंकि 'चयो द्वितीया०, यह वार्तिक 'न्यादिन्या०, सूत्रके आगे का है अर्थात् त्रैपादिक है और 'खरिच, भी त्रैपादिक है इस वास्ते 'खरिच, जो सूत्र है वह 'चयो द्वितीया, की दृष्टि में असिद्ध है इस वास्ते तकार का थकार नहीं हुआ। इसी वास्ते धुट् के अभाव में

भी टकार का ढकार नहीं होता है। शंका-'डः सि धुट्' इस सूत्रकी जगह 'डः सि धुक्, ऐसा न्यास कर देवेंगे। और वह अर्थ करेंगे कि ड को धुक् आगम हो सकार परे रहते तब तो ड को षष्ठी मान कर कार्य चल जायगा इतना बखेड़ा क्यों किया। उत्तर— धुक् करने में दोष आता है जब धुट् होता है तब तो सकार को होता है और धुक् जो होगा वह डकार को होगा तो 'षट् त्सन्तः, यहां राद्धान्तमें तो-'नपदान्ताद्योरनाम् ,यह ष्टुत्व का निषेध कर देता है। परन्तु धुक् करने पर निषेध नहीं करेगा क्योंकि धुक् डकार का अवयव होगा तो यहां पदान्त टवर्ग नहीं रहेगा इस वास्ते 'नपदान्ताद्योरनाम् , निषेध भी नहीं होता इस वास्ते धुट् किया है। 'नश्च,-अत्र पदस्याधिकारः। नान्तपद से परे स को धुट् आगम हो विकल्प करके। 'शितुक्० , पूर्व सूत्र से नकार की अनुवृत्ति करना और "अर्थवशाद् विभक्तेर्विपरिणामः" इससे न को षष्ठ्यन्त कर लेना पदान्त वकार को शकार परे रहते तुक् आगम हो विकल्प करके। शन् शम्भुः'शितुक्'इति विकल्पेन तुकि सन्त्शम्भुः "शश्छोटि" इस करके शकार का छकार। और 'झरोझरि०, से विकल्प करके चकार लोप करके चार रूप बना लेना उन्हीं चार प्रकार के रूपों को दिखाते हैं 'अछौ अ च छा, इत्यादि० च का जहां लोप हो गया वहां अछौ-जहां नहीं हुआ वहां अचछाः। जहां छत्व नहीं हुआ वहां अ च शा जहां तुक् नहीं हुआ वहां अशौ यह चार रूप होते हैं। 'ङमो ह्रस्वादचि०, यहां ङम् प्रत्याहार है और प्रत्याहार यह संज्ञा है। इस वास्ते संज्ञायां च कृतं टित्वं सामर्थ्यात् संज्ञिभिः सह संबध्यते। संज्ञामें जो टित् किया जाता है उसकी सामर्थ्य से संज्ञा घटक संज्ञियों के साथ सम्बन्ध हो जाता है अर्थात् ङमुट् के टित का प्रत्येक प्रत्याहार घटक वर्ण के साथ

संबन्ध करना चाहिये। ङ्, ट् णुट्, नुट् ऐसे आगम करना। ह्रस्व से परे जो ङम् तदन्त जो पद उससे परे अच् को नित्य ङमुट् आगम हो।

हेमपरेवा–और 'मय उञो वो, वा–इन दोनों सूत्रोंके मध्य में 'ङमो ह्रस्वादचि, यह सूत्र पढ़ा है। इन दोनों के बीच में पाठकरण सामर्थ्यात् 'वा, की अनुवृत्ति नहीं होगी। क्योंकि यदि 'वा, की अनुवृत्ति इसमें भी आ जावे तो "मयउञो वो वा,, में 'वा, ग्रहण क्यों करते "हे मपरे वा,, सूत्र घटक "वा,, ग्रहण आगे के सब सूत्रों में चला जाता फिर " मय उञो वो वा ,, में वा, ग्रहण सामर्थ्य से 'वा की अनुवृत्ति आवेगी नहीं। पुनः 'ङमो ह्रस्वादचि, इस सूत्र में नित्य ग्रहण क्यों किया! उत्तर–नित्य ग्रहण विस्पष्टार्थ है। अर्थात् तात्पर्य ग्राहकार्थ है अर्थात् कोई यह न समझले कि 'हेमपरेवा, घटक 'वा, ग्रहण आगे के पांच सूत्र में जाता है वा नहीं। इस वास्ते विस्पष्टार्थ कहा व्यर्थ नहीं कहा। अर्थात् 'ङमो ह्रस्वा दचि, इस षष्ठ सूत्र को छोड़कर शेष पांच सूत्रों में 'वा, की अनुवृत्ति है। इस वा ते नित्य ग्रहण है। भाव यह है कि 'मय उञो वो वा,में वा ग्रहण करने से और 'ङमो ह्रस्वा दचि, में नित्य ग्रहण न करने से सन्देह हो जाता कि 'हेमपरेवा,का 'वा,ग्रहण आगे के जो पांच सूत्र हैं न परे नः,इत्यादि इन्होंमें जाता है वा नहीं इस वास्ते नित्य ग्रहण किया। 'समः सुटि०, सम् के म को रु हो सुट् आगम परे रहते। 'अत्रा नुनासिक, इति–यह अधिकार सूत्र है अथवा विधि यदि अधिकार माना जावे तो अत्र ग्रहण व्यर्थ ही है–क्योंकि अधिकार मानने से ही रु प्रकरण का लाभ हो जावेगा॥ अधिकार पक्ष में–पर कार्य से पूर्व कार्य की

विशेषता द्योतनार्थ तु शब्द है व्यर्थ नहीं है। विधि पक्ष में तु शब्द व्यर्थ है–अत्र शब्द सार्थक है। तात्पर्य यह है कि-एक को अवश्य व्यर्थ करना चाहिये। इस रु प्रकरण में रु से पूर्व वर्ण को अनुनासिक हो विकल्प करके। अनुनासिकादिति० अनुनासिकात् यह ल्यप् लोप में पंचमी है। इसी वास्ते कहते हैं अनुनासिकं विहाय इति। अनुनासिक को छोड़ कर रु से पूर्व जो वर्ण उससे परे अनुस्वार का आगम हो। 'विसर्जनीयस्यसः, । विसर्ग को सकार आदेश हो खर् परे रहते। सम्स्कर्ता–यहा सम् पूर्वक कृञ् धातु से तृच् प्रत्यय करना–और 'सार्वधातु कार्धधातुकयोः, इससे गुण करना–और 'संपरिभ्याम०' इससे सुट् आगम करना-अब यहां सूत्र लगा 'समः सुटि, इस करके म् को रु कर दिया तो सरुस्कर्ता–एक पक्ष में अनुनासिक। और द्वितीय में अनुस्वार आगम सँरुस्कर्ता–संरुस्कर्ता ऐसे दो रूप बना कर। उभयत्र उकार की इत्संज्ञा और लोप–विसर्ग सँःस्कर्ता–संःस्कर्ता ऐसा हुआ। अब यहां 'विसर्जनी यस्यसः,करके सत्व प्राप्त रहा इसको बाधकर "वा शरि" इससे विकल्प करके सत्व प्राप्त रहा–सत्व इसको बाधकर वार्तिक लगा– संपुंकानां सो वक्तव्यः। सम् पुम्– कान् सम्बन्धी विसर्ग को सत्व कहना–इससे सत्व होगया तो सँस्स्कर्ता संस्स्कर्ता यह दो रूप बने। कोई आचार्य भाष्यकार के आशय को लेकर कहते हैं समो वा लोपमेके इति भाष्यम्। सम् के म् का लोप होता है विकल्प करके। लोपस्थस्यापि इति० लोप को भी रु प्रकरण में स्थित होने के कारण अनुस्वार और अनुनासिक होने से एक सकार वाले दो रूप बनेंगे। द्विसकार-कन्तू क्तमेव। दो सकार वाला तो कह ही दिया है। शंका–लोप पक्ष में द्वित्व करके दो रूप बन जायं–फिर "समः सुटि" सूत्र क्यों

किया । उत्तर । तत्र 'अनचिचेति०, तत्र माने दो सकार वाले में-" अनचि च " करके सकार को द्वित्व होने से तीन सकार के दो रूप बने इस वास्ते 'समः सुटि, किया है । शंका । अनुस्वार तो अच् है ही नहीं-फिर अनुस्वार पक्ष में 'अनचिच, करके द्वित्व कैसे होगा । उत्तर करते हैं कि- ' अनुस्वारविसर्ग जिह्वामूलीयोपध्मानीयानामिति , अनुस्वार विसर्ग जिह्वामूलीय उपध्मानीय और यम प्रत्याहार इनों का अकार के ऊपर और शरों में पाठ होने से अनुस्वार भी अच्त्व-धर्म वाला है । इस वास्ते द्वित्व होगया । अब क्या व्यवस्था हो गई-सो दिखाते हैं-लोप पक्ष में दो रूप बने सँस्कर्ता-संस्कर्ता । 'समः सुटि, करके जहां रु होगया-वहां विकल्प से द्वित्व होकर-सँस्स्कर्ता-सँस्कर्ता । अनुस्वार पक्ष में भी द्वित्व होकर दो बने-संस्स्कर्ता संस्कर्ता-इस प्रकार लोप रुत्व और द्वित्व करने से छ रूप बन गये । अनुनासिकवतामिति० और अनुनासिक पक्ष के जो तीन रूप हैं इनों में 'शरः । शर् से परे खय् को द्वित्व हो इस करके क को द्वित्व होकर छ रूप बने-अवशेष जो अनुस्वार वाले तीन बचे हैं उनोंमें 'अनचिच, करके अनुस्वार को द्वित्व कर दिया तो छ रूप बन गये । और इन छ प्रयोग में शरः खय् करके ककार को द्वित्व कर दिया इस प्रकार द्वादश प्रयोग बने इस वास्ते कहते हैं-अनुस्वारवतामिति० अनुस्वार वालों में अनुस्वार को और अपि शब्द से ककारस्यापि ककार को भी द्वित्व कर दिया। अब बारह तो अनुस्वार वाले । और छ अनुनासिक वाले । इस प्रकार मिला कर अठारह रूप बने । एषा मिति० इन अठारह प्रयोगों में 'अचो रहाभ्यां द्वे, इस करके तकार को विकल्प करके द्वित्व कर दिया । एक तकार घटक अठारह प्रयोग । और दो

तकार घटक अठारह प्रयोग। इस प्रकार छत्तीस ३६ प्रयोग बने। अब एक तकार वाले में तो द्वित्व करने का कुछ फल नहीं है–इस वास्ते कहते हैं वचनांतरेणेति० अर्थात् यणो मयो द्वे वाच्ये–करके दो तकार वाले में तकार को द्वित्व कर दिया–सो तीन तकार वाले १८ प्रयोग बन गये अब क्या व्यवस्था हो गयी एक तकार वाले १८, दो तकार वाले १८, तीन तकार वाले १८, कुल जोड़ ५४ हुआ। अब यहां तकार वृत्ति आकार को 'अणोप्रगृह्यस्या०, इस करके विकल्प से अनुनासिक होगया—तो एक सौ आठ प्रयोग बने–यह छात्र बुद्धि वर्धनार्थ लिख दिया है। शास्त्रमें इस प्रकार के प्रयोगों का अदर्शन है।केवल उक्त दो प्रयोग शास्त्रों में आते हैं।

॥ इतिशम् ॥

'पुमः खय्यम्परे,-अम् परो यस्मादिति बहुव्रीहिः। अम् है परे जिसके ऐसा खय् परे रहते पुम् के म को रु हो। पुम् + कोकिल इति स्थितौ–पुमः खय्यम्परे इत्यनेन रुत्वे अनुनासिके अनुस्वारे विसर्गेच पुँःकोकिलः पुंस्कोकिल इति रूपम। यहां 'पूङोडमसुन् इस उणादि सूत्र से डुमसुन् प्रत्यय किया है। इस वास्ते जहां अनुनासिक हो गया है वहां पर प्रकृति प्रत्यय विभाग सहितत्वं व्युत्पत्तिपक्षत्वम्। जहां प्रकृति प्रत्ययका विभाग हो उसे व्युत्पत्ति पक्ष कहते हैं इस बात को मान कर 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य, इस सूत्र कर के षत्व नहीं पावेगा क्योंकि अप्रत्ययस्य यह पर्युदास विद्यमान होनेसे। इस वास्ते'क≍पौ≍च,इससे उपध्मानीय और विसर्ग होने चाहिये थे इस वास्ते कहते हैं। सम्पुंकानां मिति० इस करके सत्व होगया और अव्युत्पत्ति पक्ष में अप्रत्ययस्य यह निषेध हो गया नहीं इस वास्ते 'इदुदुपधस्य चा प्रत्ययस्य, करके

षत्व प्राप्त हो रहा उसको बाध कर "संपुंकानां सो वक्तव्यः इससे सत्व होगया। परन्तु अनुस्वार पक्षमें केवल क≍पौ≍च से उपध्मानीय और विसर्ग ही प्राप्त रहेगा उसको बांधकर 'संपुंकानां सो वक्तव्यः, इस करके सत्व हो जावेगा इसी वास्ते वार्तिकमें पुं शब्द का उपादान किया है।

अम्परे किमिति। पुमः खय्यम्परे इस सूत्र में अम्परे क्यों किया पुमः खयि ऐसा करने से भी पुंस्कोकिल इत्यादि प्रयोग बन जायगे। उत्तर–अम्परे नहीं कहेंगे तो पुम् क्षीरम् यहां क्ष् के संयोग में क्ष हुआ है तो खर् तो ककार परे है ही रुत्व होना चाहिये। इस वास्ते अम्परे कहा। जब अम्परे कहते हैं तब प्राप्ति नहीं क्योंकि अमों में ष नहीं आया है सूत्र में खयि ग्रहण क्यों किया पुमोऽम्परे ऐसा सूत्र करने से भी पुंस्कोकिल इत्यादि बन जांयगे परन्तु पुम् दासः यहां भी सूत्र लग जायेगा क्योंकि अम्परे यह बहुव्रीहि समास है अम् है परे जिसके ऐसा कोई भी वर्ण परे रहते पुम् के म को रु विधान करेगा इस वास्ते पुम् दासः यहां अम्परे दकार वृत्ति आकार है और वर्ण परे दकार है तो यह दोष आवेगा इस वास्ते खयि ग्रहण किया है "ख्यान्ना देशेनेति" ख्यान्ना देशे परे पुमो मकारस्य रुत्वं न भवति। विद्या०। गुरुजी इसमें क्या प्रमाण कि ख्यान्ना देश में नहीं होता है। गु०–'चक्षिङः-ख्यान्, यहां भाष्यकार ने खशादि आदेश माना है और असिद्ध कांड में अर्थात् त्रिपादि प्रकरण में णत्व प्रकरण के बाद "शस्य यो वा" ऐसा कहा है श का य है इसमें श का य होकर पुंख्यानम् बना है। अब यहां अम्परे शकार नहीं है और यत्व असिद्ध है इस वास्ते रु नहीं होता है। ख्यानम् यहां लुट् प्रत्यय है। 'नश्-छव्य प्रशान्।, अम् है परे जिससे ऐसा छव् परे रहते नकारान्त

पद को रु हो प्रशान शब्द को छोड़ कर। शंका। पदस्य किम्। पदस्य क्यों कहा नकारान्त को रु हो ऐसा करने से भी कार्य हो जावेगा। उत्तर–वृहन्ति यहां अपदान्त नकार को रु हो जायगा इस वास्ते पदान्त कहना चाहिये। अम्परे किम्। अम्परे क्यों कहा सन्त्सरुः यहां छव् परे तकार है परन्तु अमों में सकार नहीं आया है इस वास्ते करना चाहिये। अप्रशान् किम् अप्रशान् क्यों किया प्रशान् तनोति यहाँ प्रशान् के नकार को रु हो जायगा इस वास्ते अप्रशान् कहा। 'नॄन्पे, नॄन् के नकारको रु हो विकल्प करके पकार परे रहते। कुप्वो≍क≍पौ चेति० खर् रूप कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्ग को क्रम से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हों—और विसर्ग भी हो। अब इस सूत्र के विषय में दो सूत्र प्राप्त हैं कहीं तो "विसर्जनीयस्य सः–" और कहीं "शर्परे विसर्जनीयः" तो यह सूत्र निरवकाश होगा–और निरवकाशोविधिरपवादः–निरवकाश विधि अपवादिका होती है—तो यह सूत्र किस का बाधक होगा—इस वास्ते लक्ष्यानुरोध से बाध्य विशेष चिन्ता पक्षमूलक परिभाषा कहते हैं—येननेति० येननाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधकोभवति–जिसकी आवश्यक प्राप्ति में जिस विधि का आरम्भ किया गया वह विधि उसकी बाधिका होती है—अब यहां 'विर्सनीयस्यसः: की आवश्यकप्राप्तिमें'कुप्वोः≍क≍पौच यह सूत्र 'विसर्जनीयस्यस, को ही बाधेगा--शर्परे विसर्जनीयः को नहीं बाधेगा—इस वास्ते वासः क्षौमम् यहां "शर्परे विसर्जनीयः" करके विसर्ग को विसर्ग करना " कुप्वोः≍क≍पौ च" नहीं लगेगा क्योंकि जब विसर्जनीयस्यसः,को बांधकर'कुप्वोः≍क≍पौ च,चरितार्थ होगया फिर 'शर्परे विसर्जनीयः, के बांधने में कोई प्रमाण नहीं है। इस

वास्ते परत्वात् 'शर्परे विसर्जनीयः, करके विसर्ग ही होगा इसी बात को कहते हैं—येननाप्राप्त इति । येननाप्राप्ते० इस न्याय से 'विसर्जनीयस्यसः, इसका यह अपवाद है। नतु शर्परे०—शर्-परे विसर्जनीयः इसका नहीं है। तेन वासः क्षौमम्० इस वास्ते वासः क्षौमम्—यहां पर विसर्ग ही हुआ। कानाम्रेडिते०कान् यह लुप्त षष्ठी है। कान्के नकारको रु हो आम्रेडित संज्ञक परे रहते। कान् कान् यहां तस्यपरमाम्रेडितमित्यनेनद्वितीय कान् शब्दस्य आम्रेडित संज्ञायाम्—कानाम्रेडिते इत्यनेन प्रथम कान् नकारस्य रुत्वे अनुस्वारे अनुनासिके च—पुनः उकारस्येत् संज्ञायाम्—लोपे-विसर्गे च—काँः कान् कांः कान इति रूपम्। अब यहां संपुंकानाम्-इससे सत्व होगया॥ वार्तिक में कान् ग्रहण नहीं करना चाहिये इस बात को कहते हैं—यद्वेति० । अथवा इससे सत्व कर लेना चाहिये—कस्कादिषु च० इण् से उत्तर विसर्ग को षत्व हो और जहां इण् से उत्तर नहीं हो वहां सकार हो—'कुप्वोः ≍क≍पौच, का अपवाद है॥ आकृतिगणोयमिति । स्वरूप से जिसमें शब्द जाने जावें उसे आकृति गण कहते हैं॥ संहितायाम्—इत्यधिकृत्य—इसका अधिकार करके। स्वस्मिन् फलशून्यत्वे सति उत्तरोत्तरैकवाक्यतया फल निष्पादकत्वम् अधिकारत्वम्। 'छे च०, ह्रस्व को तुक् आगम हो छ परे रहते संहिता के विषय में। शिव छाया यहां इससे तुक् होकर शिवत् छाया—अब अन्य सूत्रों के क्रम को कहते हैं—'स्तोःश्चुनाश्चुः, यह सूत्र "झलां जशोऽन्ते"की दृष्टि में असिद्ध है इस वास्ते तकार का दकार हो गया—फिर 'खरि च, करके द का त पाया इस वास्ते कहते हैं कि 'खरिच, यह सूत्र 'स्तोः श्चुनाश्चुः, की दृष्टि में असिद्ध है इस वास्ते

'स्तोःश्चुनाश्चुः करके दकार का जकार हो गया फिर 'खरिच, करके चर्त्व हो गया। शिवच्छाया ऐसा रूप बना। शंका–यहाँ 'चोः कुः, से च को क क्यों नहीं होता है। इस वास्ते कहते हैं 'श्चुत्वस्येति, स्तोःश्चुनाश्चुः करके जो द का च हुआ है वह 'चोः-कुः, की दृष्टि में असिद्ध है इस वास्ते 'चो० कुः, नहीं लगता है। 'शंका–चर्त्व को असिद्ध कहना था श्चुत्वको क्यों कहा। उत्तर। चर्त्व को ही असिद्ध मानते तो ज को ग कर देता। इस वास्ते चर्त्व भी असिद्ध है। और श्चुत्व भी असिद्ध है यह बात बतलाने के वास्ते श्चुत्व को ही असिद्ध माना। अर्थात् 'चोः कुः, सूत्र को दकार ही दीख पड़ता है इस वास्ते नहीं लगा॥ 'आङ् माङो रिति'=आङ् और माङ् को तुक् आगम हो छ परे रहते। 'पदान्ताद्, वा–इस करके जो विकल्प प्राप्त रहता है उसका बाधक है। 'दीर्घात्,-यह पंचम्यन्त है-दीर्घको तुक् आगमहो छ परे रहते। अब यहां कहते हैं कि 'दीर्घात् ,यह पचम्यन्त है-और-छे-सप्तम्यन्त है तो यहां पर 'उभय निर्देशे पंचमी निर्देशो बलीयान्-इस परिभाषासे तस्मादित्यु० इसको बलवान् होने के कारण दीर्घ से परे छ को तुक् आगम हो यह अर्थ होना चाहिये। और इस अर्थ के करने में चे छिद्यते में दोष आवेगा–क्योंकि छ को तुक् आगम हो–वह तुक् कित् है इस वास्ते कित्वादन्ते क इत्हो जानेसे अन्तमें होता हैतो चे छिद्यते इस अवस्थामें छ को तुक् करोगे तो छ के आगे तुक् हो गया चेछ् त् इद्यते–ऐसा बनेगा अब यहां स्तोः श्चु नाश्चुः करके छ के योग में तवर्ग का चवर्ग हो कर चेछ्चद्यते ऐसा छकार के परे चकार श्रवण युक्त प्रयोग बनेगा–इस वास्ते कहते हैं दीर्घस्यायंतुक् नतु छस्येति। दीर्घ को ही यह तुक् होता है छकार को नहीं। अर्थात् यहां उक्त परिभाषा नहीं लगती है क्योंकि आ-

वार्य ने-सेना सुराच्छाया ८२८ के सूत्र में दीर्घ को तुक् आगम किया छकारको नहीं-यदि छकारको होता तो "सेना सुराछ्चाया" ऐसा छकार के आगे चकार का श्रवण होता। इससे जानते है कि उभय निर्देशे० यह न्याय तुक् विषय में नहीं लगता है॥ पदान्ता द्वा० यहां भी पूर्ववत् दीर्घ को तुक् करना। पदान्त दीर्घ को तुक् आगम हो छ परे रहते विकल्प करके। इति हल् सन्धिप्रकरणम्॥

——:०:——

'अथ स्वादि सन्धि प्रकरणम्'

शंका-'स्वौजस्मौट्,० इस सूत्र में 'वौंजस्मौट्, ऐसा न्यास करेंगे। अर्थात् सु की जगह रु पढ़ेंगे लाघव क्या होगा वैसे तो सु प्रत्यय की भी डेढ़ मात्रा है और रु की भी परन्तु सु पढ़ने में क्रिया गौरव है। प्रथम सु करना फिर उसे रु करना यह सब बखेड़ा करना पड़ता है और रु करने में रुत्वादि बखेड़ा नहीं करना पड़ता। उ०-सुपि च इत्यादि सूत्रों में अब तो सुप् प्रत्याहार सु से सुप् तक लिया जाता था अब क्या करेंगे सुप् प्रत्याहार नहीं बनेगा यदि कहो कि 'रुपि च, ऐसा पढ़ देंगे काम चल जायगा तो ऐसा करोगे तो राम + रु यहां एक वचन में 'रुपि च, करके दीर्घ हो जायगा यह दोष आवेगा। इस वास्ते सु के स्थान पर रु पढ़ना ठीक नहीं है। शं०-यहाँ दोष नहीं है क्योंकि पथिन् शब्द से रु प्रत्यय किया पथिन् रु ऐसा हुआ। अब यहां 'इतोत्सर्वनाम,० से इकार का अकार किया पथन् + रु ऐसा हुआ अब यहां'पथिमथ्यृ, करके नकार का अकार किया फिर 'थोन्थः, से न्थादेश करके पन्था रूप बनता है। अब यहां पर नकार का 'न लोपः प्राति० करके लोप कर देंगे 'थोन्थः, से न्थादेश पन्थ रु अब यहाँ

'रुपि च, करके दीर्घ हो जायगा तो पन्थाः बन जायगा फिर 'पथि मथि,० यह सूत्र क्यों किया इस सूत्रारम्भ सामर्थ्य से और 'प्रत्ययः, 'परश्च, इस निर्देश से कल्पना करेंगे ' कि प्रथमैक वचने दीर्घो न भवति, इस वास्ते सु के स्थान पर रु न्यास करना उत्तम है। उ०-यशोऽत्र, पयोऽत्र नहीं बनेंगे क्योंकि पयस् शब्द है रु प्रत्यय किया 'र्मोनपुंसकात्, से रु का लोप किया पयस् अत्र ऐसा हुआ अब यहाँ 'ससजुषो, करके सकार का रुत्व किया पय रु अत्र ऐसा हुआ। अब यहां पर 'अतो रो र, यह सूत्र नहीं लगेगा क्योंकि इस सूत्र की दृष्टि में रुत्व विधायक सूत्र असिद्ध है। अतः उत्व नहीं होगा और जब सिद्धान्त में सु पढ़ते तो सब जगह 'ससजुषो, से हुआ रु मिलता है वह 'अतोरोरप्लु० की दृष्टि में असिद्ध है तो कहीं मिले हीगा नहीं फिर 'अतो रोर०, सूत्र हुआ व्यर्थ व्यर्थ हो कर नियम कर देता है कि 'उत्वम्प्रति रुत्वं ना सिद्ध मिति, उत्व के प्रति रुत्व असिद्ध नहीं होता है रुत्व को उत्व विधान सामर्थ्य से अब सु की जगह रु विधान करने से यह बात नहीं कह सकते क्योंकि उत्व विधान शिवोऽर्च्यः में चरितार्थ है क्योंकि यहां पर शिव शब्द से 'वौंजस्मौट्, से रु प्रत्यय किया है 'ससजुषो, से नहीं किया है अतः यह असिद्ध नहीं है तो 'अतो रोर,० यह सूत्र चरितार्थ हो गया व्यर्थ नहीं है अतः 'उत्वं प्रति रुत्वं नासिद्धप्, यह नियम भी नहीं लगेगा इस वास्ते यशोऽत्र पयोऽत्र रूप नहीं बनेंगे अतः 'स्वौजस्०, की जगह 'वौंजस्० यह न्यास करना ठीक नहीं है। शं०-आप का यह कथन ठीक नहीं क्योंकि यहां पर तो 'अतोरोर,० इस सूत्र में अप्लुतात् ग्रहण से यह कल्पना करना कि ' उत्वं प्रति रुत्वं,० । अप्लुत ग्रहण व्यर्थ कैसे है तो कहना कि एहि सुश्रोतस् अत्र स्नाहि यहांपर 'दूराद्धूते च'

से। प्लुत किया और स का 'ससजुषो०, से रुत्व किया अब यहां रुत्व को असिद्ध होने से ' अतो रो र०, नहीं लगेगा फिर अप्लुतात् यह ग्रहण क्यों किया।

यही व्यर्थ होकर नियम कर देगा कि ' उत्वं प्रति० ,। फिर यशोऽत्र इत्यादिकों में दोष है ही नहीं अतः 'स्वौजस्०, की जगह 'वौंजस्०, यह न्यास करना ठीक ही है। उ०-'अतोरोर०, इस सूत्र में अप्लुतात् ग्रहण व्यर्थ नहीं है क्योंकि देवदत्तः ग्रामं गतवान् किम् यहां पर चरितार्थ है। क्योंकि देवदत्त शब्द से 'वौंजस् , से रु प्रत्यय किया। अब यहां पर 'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः इससे तकार वृत्ति अकार को प्लुत किया तो देवदत्तः ३ ग्रामं गतवान् ऐसा बना। यदि इस सूत्र में अप्लुत ग्रहण नहीं करोगे तो यहाँ पर प्लुत अकार से परे रुको उत्व हो जायगा। अतः अप्लुतात् ग्रहण व्यर्थ नहीं है। अतः 'उत्वं प्रति०' यह कल्पना भी नहीं करना इस लिये यशोऽत्र इत्यादिकों में दोष बना ही रहेगा। तो फिर 'स्वौजस्' के स्थान में 'वौंजस् ,न्यास ठीक नहीं। शं०-अच्छा हम इस सूत्र में जो अतो में तपर करण किया है उसे व्यर्थ करके यह कल्पना कर लेंगे कि उत्वम्प्रतिरुत्वं नासिद्धम्-इस वास्ते यशोऽत्र पयोत्र भी बन जांयगे फिर 'वौंजस्०' न्यास भी ठीक है। उ०। नहीं अत् में तपर करण व्यर्थ नहीं है क्योंकि विश्वपा शब्द से 'वौंजस्०' से रु प्रत्यय किया विश्वपा रु ऐसा हुआ अब यहां पर तपर करणके अभावमें रु को उत्व हो जायगा इस वास्ते अत् मेंतपर करण व्यर्थ नहीं है तो उक्त कल्पना भी नहीं करेगा अतः यशोऽत्र में दोष बना ही रहेगा फिर 'वौंजस्मौट् , न्यास भी ठीक नहीं है। शं०'पुनरपि यशोऽत्र,में दोष नहीं है'वौंजस् ,ही न्यास ठीक है क्योंकि

उत्व के प्रति रुत्व असिद्ध हो तो 'अहन , सूत्र क्यों किया यह सूत्र अहन् + भ्याम् यहांपर नकार को रु करता है फिर रुको उत्व होकर अहोभ्याम् बनता है अब वह नहीं बनेगा क्यों 'अहन ,सूत्र करके जो नकार को रु होता है वह रुत्व विधायक की दृष्टि में असिद्ध है। तो रु का उत्व नहीं होगा तो रूप नहीं बनेगा अहर्भ्याम् बनेगा। यदि ऐसा ही करना था तो 'रोऽसुपि, सूत्रमें असुपि मत करो 'रः, ऐसा सूत्र करेंगे और अहन के नकार को र् हो ऐसा अर्थ करेंगे तब तो इसी से अहर्भ्याम् बन जायगा। पुनः 'अहन , सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'उत्वं प्रति रुत्वं ना सिद्धम् ,। ऐसा करने पर यशोऽत्र इत्यादि में दोष नहीं होगा फिर 'वौंजस् , इत्यादि न्यास करना ठीक नहीं है। उत्तर–अहन् यह सूत्र व्यर्थ नहीं है। क्योंकि दीर्घाहा निदाघः यहां चरितार्थ है। दीर्घाहन् शब्द में रु प्रत्यय किया रु का 'हल्ङ्याब्भ्यो०, से लोप होकर दीर्घाहन् ऐसा हुआ अब यहां पर 'अहन , सूत्र से नकार को रु किया और रुत्व-स्यासिद्ध त्वात् सर्वनामस्थाने से दीर्घ कियाऔर 'भो भगो अघो, से रु का यत्व किया 'हलि सर्वेषां, से लोप किया तब दीर्घाहा निदाघः यह रूप बना अब यहां 'रोऽसुपि, में 'असुपि ग्रहण न कर के 'रः, इतना ही सूत्र करके र करोगे तो रकार का यकार नहीं होगा इस वास्ते अहन् सूत्र करना चाहिये। किया तो 'उत्वं प्रति रुत्वं नासिद्धं ,यह ज्ञापन नहीं करेगा तो यशोऽत्र इत्यादिकों में दोष बना ही रहेगा। इस वास्ते 'वौंजस्मौट् , न्यास करना ठीक नहीं शं०। नहीं न्यास करना ठीक है क्योंकि यशोऽत्र में तो दोष नहीं है क्योंकि यदि यह कहोगे कि 'रोऽसुपि, सूत्र क्यों किया अहन् + अहः यहां पर अहन् सूत्र से रुत्व करके भी अहरहः प्रयोग बन जायगा। यदि कहो कि रुत्व करने पर उत्व हो जायगा सो तो होगा नहीं क्योंकि

अहन् सूत्र करके जो रुत्व होता है वह के उत्व प्रति असिद्ध है। पुनः 'रोऽसुपि, सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा कि 'उत्वंप्रति.० इ०। रोऽसुपि सूत्र व्यर्थ नहीं है 'अहन् भाति यहां पर नकार को रकार होकर अहर्भाति बने इस वास्ते चरितार्थ है व्यर्थ नहीं यदि 'रोऽसुपि, न करोगे और अहन् से रुत्व करोगे तो रु का यकार होकर और यकार का लोप होकर अहभाति रूप बनेगा इस वास्ते रोऽसुपि व्यर्थ नहीं है। अतः 'उत्वं प्रति, यह कल्पना भी नहीं करेगा तो यशोऽत्र में दोष पूर्ववत् बना ही रहेगा इस वास्ते 'वौजस्मौट्, न्यास ठीक नहीं है। शं०। अच्छा हम यह कहेंगे कि 'रूपरात्रि, यह वार्तिक क्यों किया क्योंकि अहो रूपम् इत्यादिकों में 'रोऽसुपि से रकार होकर भी वैसा ही रूप बनेगा और 'रूपरात्रि, ० से रकार करने पर भी वैसा ही बने। रु करने पर भी उत्व नहीं होगा क्योंकि उत्व के प्रति रुत्व असिद्ध है। इस वास्ते वार्तिक व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'उत्वं प्रति,० फिर न्यास करना ठीक ही है। उत्तर 'रूप रात्रि,० इत्यादि वार्तिक व्यर्थ हो कर विशेष नियम करेंगे क्योंकि ' ज्ञापकस्य विशेषापेक्षत्वात्। क्या नियम करेंगे कि अहन् शब्द को रुत्व करने पर उत्व की दृष्टि में रुत्व असिद्ध नहीं होता है। तब तो वार्तिक चरितार्थ है और यशोऽत्रमें दोष है क्योंकि वहां कोई नियम करने वाला है नहीं इस वास्ते न्यास करना भी ठीक नहीं है इस वास्ते कहते हैं कि'स्वौजस्मौडिति० सु प्रत्यये शिव रु अर्च्य इति स्थिते।'ससजुषो,०। पदान्त सकार को और सजुष् को रु हो। सजुष् शब्द का भी पदान्त सकार होना चाहिये अन्यथा सजुषो में भी रु हो जाता। जहां जहां पदान्त सकार मिलेगा वहां २ सर्वत्र 'झलां जशोऽन्ते, से रकार प्राप्त रहेगा और सजुष् में षकार का डकार प्राप्त रहेगा

तो सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा इस वास्ते कहते हैं जश्त्वाऽपवाद इति यह जश्त्व का अपवाद है। शं० 'झलाँ जशोऽन्ते, यह त्रैपादिक है और ' ससजुषोः , यह भी त्रैपादिक है तो ' झलाँ जशोऽन्ते, की दृष्टि में 'ससजुषो, यह सूत्र असिद्ध हो जायगा फिर अपवाद कैसा। उ०—यम्प्रति यस्यापवादत्वं तम्प्रति तस्यनासिद्धत्वम् जो जिसके प्रति अपवाद होता है वह उसके प्रति असिद्ध नहीं होता है इस वास्ते असिद्ध नहीं हुआ। अपवाद दो प्रकार से होता है एक 'बाध्य सामान्यचिन्ता पक्ष, मेरे विषय में जो २ सूत्र पावें वे सब बांध लिये जाते हैं और दूसरा 'बाध्य विशेष चिन्ता पक्ष, है। अर्थात् एक सूत्र को बांध कर जब चरितार्थ हो जाय तब दूसरे के बाधने में कोई प्रमाण नहीं रहता है। तो यहां बाध्य विशेष चिन्ता पक्ष है। येन ना प्राप्तौ इस न्याय से 'ससजुषो, यह 'झलाँ जशों,० का बाधक है 'संयोगान्तस्य, का नहीं यदि इसका भी बाधक हो जाता तो श्रेयान् नहीं बनेगा। यहां श्रेयस् शब्द से नुम् और दीर्घ हो कर श्रेयान्स् ऐसा है यदि 'संयोगान्तस्य०' का भी बाधक हो जाता तो यहा सकार का लोप नहीं होता इस वास्ते बाध्यविशेषचिन्तापक्ष मूलक इसको अपवाद कहना। बाध्यसामान्य चिन्ता पक्ष मूलक नहीं कहना।

"अतोरोरप्लु०" अप्लुत अकार से परे रु को उ हो अप्लुत अकार परे रहते। शं०। उत्व की दृष्टि में यत्व विधायक जो 'भो भगो' सूत्र है यह असिद्ध होने से प्रथम रु को उकार कर भी लिया तब भी स्थानिवद्भाव से उकार में रुत्व बुद्धि करके 'भोभगो' से यकार होना चाहिये। उ०भोभगो अघो०इति प्राप्त यत्वस्यापवादः।

'भोभगो, करके प्राप्त जो यत्व है उसका अपवाद है। यह अपवाद सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तत्र कौण्डिन्यन्यायेन बाधकः। सब ब्राह्मणों को दही देना चाहिये परन्तु कौण्डिन्य ऋषि को छाछ देनी चाहिये। जिस प्रकार यहां तक्र दान ने दही दान सर्वथा बाधा किया इसी प्रकार उत्वभी यत्व का बाधक है। क्योंकि तद् प्राप्ति योगेऽचरितार्थ्ये सति कृते च तस्मिन् चारितार्थ्यम् तत्पद से लेना भो भगो० इसके अप्राप्ति योग्य स्थल में उत्व विधायक अचरितार्थ है। कृते च तस्मिन् अर्थात् उत्व के करने पर यत्व चरितार्थ है इस वास्ते उत्व ने यत्व का बाधा किया। इसी वास्ते यत्वस्यापवादः यह लिखा है। शं०। 'अतोरोरप्लु०, यह रूपाद सप्ताध्याय पठित सूत्र है और 'ससजुषो, रुः यह त्रैपादिक है इस वास्ते उत्व विधायक की दृष्टि में रुत्व विधायक असिद्ध होने से उत्व नहीं होना चाहिये। इस वास्ते कहते हैं उत्वं प्रति० उत्व के प्रति रुत्व असिद्ध नहीं होता है रु का नाम लेकर उत्व विधान सामर्थ्य से—अर्थात् 'अतोरोर०, यह सूत्र रु का नाम लेकर उत्व विधान करता है यदि रु असिद्ध हो जाय तो उत्व किसको करे अतोरो० यह सूत्र ही व्यर्थ हो जाय इस वास्ते असिद्ध नहीं है। शं०। अच्छा हम त्रिपादिकों में रो सुपि के आगे अतो रोर० की की जगह 'पर अत उ रति, ऐसा न्यास करेंगे और अत् से परे रु को उ हो अत् परे रहते ऐसा करेंगे तब तो उत्व की दृष्टि में रुत्व असिद्ध नहीं होगा फिर कैसे कहा 'उत्वं प्रति०। उ०। यदि 'अत् उ रति, ऐसा न्यास करके त्रैपादिकोंमें करोगे तो "आद्गुणः" की दृष्टिमें उत्व विधायक असिद्ध हो जायगा तो 'मनोरथः, में 'रोरि, करके लोप हो जायगा और "शिवोऽर्च्य,, में गुण नहीं

होगा इस वास्ते यह न्यास करना और त्रैपादिकों में पढ़ना ठीक नहीं है।

'प्रथमयोः पूर्व सवर्णः, । यहां प्रथमयोः यह एक शेष है इस वास्ते एक प्रथम शब्द से प्रथमा का ग्रहण है और द्वितीय प्रथम शब्दसे द्वितीयाका ग्रहण है इस वास्ते यह अर्थ हुआ अक् से प्रथमा द्वितीय का अच् परे रहते पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश हो। इति प्राप्ते। इससे दीर्घ प्राप्त रहा।

'नादिचि, अवर्ण से इच् परे रहते पूर्व सवर्ण दीर्घ नहीं हो। इससे निषेध होगया इस वास्ते दीर्घ नहीं हुआ।'आद्गुणः, से गुण 'एङः पदान्तादति, से पूर्व रूप होकर 'शिवोऽर्च्यः, यह रूप बना। शं०। शिव उ अर्च्यः यहां पर 'आद्गुणः से गुण प्राप्त रहा उसका 'नादिचि' ने निषेध किया परन्तु फिर भी गुण नहीं होना चाहिये क्योंकि जिसका अवसर भ्रष्ट हो जाता है वह भ्रष्ट ही रहता है। यहां 'आद्गुणः, का अवसर भ्रष्ट होगया इस वास्ते 'आद्गुणः, नहीं होना चाहिये । उ०। 'तो सत्, इत्यादि निर्देश से भ्रष्टावसर न्याय नहीं लगता है। इस वास्ते गुण होगया 'शिवोऽर्च्यः, बन गया यहां पर कोई कोई यह कहते हैं कि देवदत्त हत हन्तृ न्याय लगनी चाहिये। क्योंकि देवदत्त स्थानापन्न कौन है गुण उसका हन्ता कौन 'प्रथमयोः पूर्वः, उसका हन्ता नादिचि फिर गुण का होना असम्भव है। उ०। यह न्याय यहां पर नहीं लगता है किन्तु 'आद्गुणः' को जिस वक्त हनन करने को 'प्रथमयोः, सूत्र तैयार हुआ तब ही 'नादिचि, ने 'प्रथमयोः, का हनन कर दिया। इस वास्ते आद्गुणः यह हत नहीं हुआ इस वास्ते गुण होगया। अत् इति तपरः किम् इसका

यह भाव है कि 'अतो रो र०' इस सूत्र में अत शब्द मेंतपर करण क्यों किया 'अरोरप्लुतादप्लुते, ऐसा ही सूत्र करेंगे और अ को लुप्त पञ्चम्यन्त मानेंगे तब तो देव जस् जकार की इत् संज्ञा लोप 'प्रथमयोः, से दीर्घ देवास् अत्र 'ससजुषो, से रुत्व देवारु अत्र ऐसा हुआ अब यहां भी दीर्घ आकार से परे रु को उत्व होना चाहिये इस वास्ते अत् में तपर करण किया । जब तपर करण करते हैं तब प्राप्ति नहीं क्योंकि 'तपरस्तत्कालस्य करके ह्रस्व अकार लिया जाता है दीर्घ नहीं । 'अप्लुतेति, यहां अति में तपर करण क्यों किया। उ०। श्वस् + आगन्ता यहां दीर्घ आकार परे रहते भी लग जायगा । इस वास्ते तपर करण किया । शं०। अत् से परे रु को उ हो अप्लुत अकार परे रहते ऐसा करने पर भी कार्य चल जायगा फिर अप्लुतादिति किम् उ० । एहि सुश्रोतस् अत्र स्नाहि यहाँ 'दूराद्धूते च, से तकार वृत्ति अकार को प्लुत किया तो एहि सुश्रोत ३स् अत्र स्नाहि ऐसा बना अब स का रु किया अब यहां भी अकार से परे रु को उ हो जायगा। इस वास्ते अप्लुतात् ग्रहण करना चाहिये । शं० यहां तो दोष नहीं है क्योंकि अत् में तपर करण पड़ा है अतः 'तपरस्तत्का, करके ह्रस्व अकार से परे ही रु को उ हो सकता है प्लुत आकार से परे नहीं होगा फिर अप्लुतादिति किम् । उ० । 'अतो रो र०' इस सूत्र करके जो उत्व हुआ है इसकी दृष्टि में प्लुत विधायक जो 'दूराद्धूते०, है यह असिद्ध है इस वास्ते ह्रस्व अकार से परे होगया तो सुश्रोत ३स् अत्र स्नाहि में भी उत्व हो जायगा अतः अप्लुतात् ग्रहण करना चाहिये।शं० । अच्छा। जब उत्व विधायक की दृष्टि में प्लुत विधायक असिद्ध है तो

'अतो रो र०' इस सूत्र में अप्लुतात् ग्रहण करने पर भी सुश्रोउ ३स + अत्र स्नाहि में उव होना चाहिये। उ०। अप्लुतादिति विशेषणे तु इति० जब अप्लुतात् यह विशेषण करते हैं तब तो अप्लुतात् ग्रहण सामर्थ्य से असिद्ध नहीं होता है। अर्थात् अप्लुतात् ग्रहण करने पर भी रुत्व हो जाय तो 'अतोरो र० इस सूत्र में अप्लुतात् ग्रहण ही क्यों करते। अतः 'अप्लुतात्, ग्रहण सामर्थ्य से प्लुत विधायक असिद्ध नहीं होता है इस वास्ते सूत्र में अप्लुतात् ग्रहण किया। शं०। अत् में जो तपर करण किया तत्सामर्थ्यात्ही सुश्रोत ३स् अत्र स्नाहि में नहीं होगा फिर अप्लुतात् क्यों किया। उ०। देवा अत्र यहां रु का उकार नहीं हो इस वास्ते तपर करण किया है। इस लिये तपर करण से उक्त कल्पना नहीं हो सकती है किन्तु अप्लुतात् ग्रहण से उक्त कल्पना करनी चाहिये कि उत्व की दृष्टि में प्लुत विधायक असिद्ध नहीं होता है। तब तो पयस्पटि। पयोददाति इस अर्थ में आगच्छ हे पयो३ऽट् हे पयो३द् यहां पर पयस् के सकार को रु होगया। पयरु अट् पयरु द् इस जगह पर 'दूराद्धूतेच, से प्लुत किया है अब पीछे यह कल्पना करने से कि अप्लुत ग्रहण सामर्थ्य से उत्व की दृष्टि में प्लुत असिद्ध नहीं होता है तब तो हे पयो३ऽट् हे पयो द् यहां भी प्लुत असिद्ध नहीं होगा तो अप्लुत अकार से परे रु नहीं किन्तु प्लुत से ही परे है तो दोष आवेगा इस वास्ते अप्लुत ग्रहण सामर्थ्यात् उक्त कल्पना नहीं करनी चाहिये। उ०—एक पदस्थ वर्ण द्वयापेक्ष होने से उत्व अन्तरंग है। वाक्य सम्पादकत्वपदान्तरापेक्ष होने से प्लुत बहिरंग है। इस वास्ते 'असिद्धं बहिरंग, से प्लुत असिद्ध

हो जायगा । इस वास्ते प्रथम उत्व करेंगे पश्चात् प्लुत इस वास्ते दोष नहीं है । शं०–सुश्रोत ३स् यहां पर भी प्रथम अन्तरंग त्वात् उत्व करेंगे पश्चात् प्लुत तब तो अप्लुत ग्रहण करने पर भी उत्व होना चाहिये । उ०–अप्लुत ग्रहण सामर्थ्य से यह कल्पना करते हैं कि कहीं हो उत्व की दृष्टि में प्लुत असिद्ध होता है और कहीं नहीं होता है । अतः हे पयो३ऽद् यहां प्लुत असिद्ध होगया है और सुश्रोत ३स् यहां असिद्ध नहीं हुआ इस वास्ते अप्लुत ग्रहण है । शं०–अप्लुते इति किम् अति में तपर करण पड़ा है इसी से कार्य चल जायगा फिर अप्लुते क्यों कहा । उ०–तिष्ठतु पयस् अ३ग्नि दत्त यहां 'गुरोरनृतो०, से अग्नि का अकार प्लुत है और यह जो प्लुत हुआ है यह उत्व की दृष्टि में असिद्ध है । अतः अत से परे अत मिल जायगा तो यहां पर भी तिष्ठतु पयरु अग्नि दत्त में भी रु का उ होजायगा इस वास्ते अप्लुतेऽ ति कहा । जब अप्लुते कहते हैं तब अप्लुते ग्रहण सामर्थ्य से असिद्ध नहीं होता है । अतः अप्लुते किया । तपर करण को सामर्थ्य नहीं दे सकते हैं क्योंकि दीर्घ की आवृत्ति करने के वास्ते चरितार्थ श्वस् आगन्ता इत्यादि में ॥ 'हशि च, । अप्लुत अकार से परे रु को उ हो हश् परे रहते । शिवस् वन्द्यः, शिवो वन्द्यः । शं०–'हशि च, और 'अतो रो र० यह दोनों सूत्र र को उ करते हैं । क्योंकि रु वृत्ति उकार की तो इत्संज्ञा हो जाती है तब तो प्रातर् अत्र यहां पर 'अतो रो र०, से और भ्रातर् गच्छ यहां पर 'हशि च, से रकार को उकार होना चाहिये । उ०–'रोरित्युकारानुबन्ध ग्रहणान्नेह, दोनों सूत्रों में रो निर्दोष किया इस वास्ते उकारानुबन्धक रेफ को उत्व करते हैं इस वास्ते उक्त प्रयोग में

दोष नहीं है। देवास् + इह यह जस् का रूप है यहां 'ससजुषोरुः, से रु होगया देवारु इ ऐसा बना फिर सूत्र लगा 'भो भगो अघो,–भो भगो अघो अवर्ण यह चार हैं पूर्व में जिसके ऐसे रु को यकारादेश हो अश् परे रहते। असन्धि सौत्र इति। सूत्रे कृतः सौत्रः 'कृत लब्ध क्रीत कुशला इत्यण्, अर्थात् यहां 'भगो अघो अपूर्वस्य यहां दोनों स्थलों पर 'एङ पदान्ता०, से पूर्व रूप पाया था वह सौत्रत्वात् नहीं हुआ। भोस् भगोस् अघोस् इन्हों को सान्त का अनुकरण अथवा भोर् भगोर् अघोर् यह रान्त अनुकरण मान लेवें तो रु का यकार होकर लोप हुआ है इस वास्ते यकार लोप को असिद्ध होने से सन्धि नहीं होगी। शं०–सान्तानुकरण मानने से ही सन्धि नहीं होगी फिर रान्तानुकरण क्यों मानते हो। उ०–'विभाषा भवद् भगवद्, इत्यादि वार्तिक पठित भो शब्दादिकों का भी ग्रहण हो इस वास्ते रान्तानुकरण किया है। शं०–'भो-भगो अघो०, इस सूत्र में अशि ग्रहण क्यों किया क्योंकि जहां विसर्ग और यत्व की प्राप्ति रहेगी वहां यत्व को असिद्ध होने से विसर्ग ही हुआ करेगा फेर अशि किम्। उ०–देवास् + सन्ति यहां पर जस् सुप् होने से देवास् की पद संज्ञा है अतः सकार को 'ससजुषो०, से रु किया उकार की इत्संज्ञा लोप देवार् सन्ति अब यहां पर भी रकार को यकार हो जायगा। इस वास्ते अशि करना चाहिये। जब अशि करते हैं तब प्राप्ति नहीं है क्योंकि अश् परे नहीं है। शं०–देवाः सन्ति में दोष नहीं है क्योंकि 'भो भगो अघो, से यत्व प्राप्त रहा और 'खरवसानयोः०, से विसर्ग तब पूर्वत्रा सिद्धं करके यत्व विधायक विसर्ग विधायक की दृष्टि में असिद्ध हो जायगा तो विसर्ग

होगा फिर अश् ग्रहण क्यों किया। उ०—यद्यपि विसर्ग विधायक की दृष्टि में यत्व विधायक असिद्ध हो कर विसर्ग ही होगा परन्तु विसर्ग को 'स्थानिवदादेशो०, से स्थानिवद्भाव करके यत्व हो जायगा इसी बात को कहते हैं"यद्यपी यत्वस्यासिद्धत्वात् विसर्गो लभ्यते,, यद्यपि यहां यत्व को असिद्धहोने से विसर्ग हो जायगा 'तथापि विसर्गस्य स्थानिवद्भावेन रुत्वाद्यत्वंस्यात्, तब भी विसर्ग को स्थानि वद्भाव से रु मान कर यकार हो जायगा। शं०—देवाः सन्ति में स्थानिवद्भाव से विसर्ग में रुत्व बुद्धि नहीं कर सकते क्योंकि यह विसर्ग रेफ का हुआ है रु का नहीं इस वास्ते अनलविधौ निषेध हो जायगा तो रत्व आवेगा ही नहीं फिर अश् ग्रहण क्यों किया। उ०—'नह्ययमल्विधिः, यह अल् विधि नहीं है क्योंकि 'रोरिति समुदाय रुपाश्रणात्, क्योंकि समुदाय रु का नाम लेकर विसर्ग विधान करता है अतः अशि ग्रहण करना चाहिये। यह प्राचीनों का समाधान है नवीन तो परिष्कार से देवाः सन्ति में हटा कर छन्दःसु इत्यादि में दोष देते हैं सो विस्तार भय से नहीं लिखा है परिशिष्ट में लिखेंगे। भोस् भगोस् अघोस् यह सकारान्त निपात हैं इन्हों के आगे विभक्ति का लोप होता है अतः यह सब पद हैं। 'तेषां रोर्यत्वे कृते, उन्हों के रु को यत्व करने पर 'व्योर्लघु प्रयत्नतरः शाकटायनस्य, पदान्त में विद्यमान जो वकार यकार इन्हों को लघूच्चारण वकार यकार आदेश हों विकल्प करके अश् परे रहते। लघुच्चारण किसे कहते हैं। यस्योच्चारणे इति० जिसके उच्चारण करने में जिह्वा का अग्र भाग समीप भाग मध्य और मूल भाग शैथिल्यहो जांय उसे लघूच्चारण कहते हैं।

'ओतो गार्ग्यस्य' ओकार से परे पदान्त जो अलघु प्रयत्न यकार उसका नित्य लोप हो। शं० इस सूत्रमें नित्य कहां से आया क्योंकि यह गार्ग्य के मत में लोप करेगा इस वास्ते विकल्प होना चाहिये। उ०। यहाँ गार्ग्य ग्रहण पूजार्थ है अर्थात् नित्यार्थ है यदि विकल्प करना था तो 'लोपः शाकल्यस्य, से ही लोप कर देते दो रूप बन जाते। भो अच्युतः अत्र यकारस्य लोपः। लघु प्रयत्न पक्षे नैव लोपः। भोयच्युत इति। पदान्तस्य किम्। तोयम्। यहां अपदान्त यकार का भी लोप हो जायगा अतः पदान्त किया है। जब पदान्त करते हैं तब प्राप्ति नहीं क्योंकि यह मध्य में यकार है। 'उञ्चिचपदे,। अवर्ण है पूर्व में जिसके ऐसे पदान्त यकार वक का लोप हो उञ् पद परे रहते। सस् उ एकाग्निः यहां सकार का रुत्व और रुत्व का यकार करके लोप करना। शं०। 'ऊञ्चि च पदे, इस सूत्रमें उञ् यह सर्वदा पद ही मिलेगा फिर पदे किम् पद ग्रहण क्यों किया। उ० तन्त्रे + उतम् यहां 'एचोयवा०,से ए का अय् हो कर तन्त्र युतम् ऐसा बना और उतम् यहां वेञ् धातु से क्त प्रत्यय किया और 'वचि स्वपि०, से यकारको सम्प्रसारण किया 'इग्यणः, से सम्प्रसारण संज्ञा, और 'सम्प्रसारणाच्च से पूर्व रूप तब उतम् बना है। अब यदि पद ग्रहण नहीं करेंगे तो उञ् पद नहीं है अतः यकार का लोप होकर तन्त्र उतम् बन जायगा इस वास्ते पद ग्रहण करना। जब करते हैं प्राप्ति नहीं क्योंकि उञ् तो है परन्तु पद नहीं है। पद तो उतम् यह समुदाय है केवल उ नहीं है और चाहिये उञ् पद इस वास्ते दोष आवेगा। शं०। यहां दोष नहीं है क्योंकि यह जो उतम् है यह लाक्षणिक है (सूत्रेण कृतं लाक्षणिकम्) और 'उञ्चि च पदे, में जो उञ् है वह निपातनसे बनाया है यानी प्रति-

पदोक्त है (स्वयं सिद्धं प्रतिपदोक्तम्) इस वास्ते 'लक्षण प्रतिपदोक्तयोः प्रतिप्रदोक्तस्यैव ग्रहणम्, लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त के ग्रहण में प्रतिपदोक्त का ही ग्रहण होता है इस लिये 'उतम्, तो लाक्षणिक है और सूत्र में प्रतिपदोक्त है तो उतम् का ग्रहण नहीं होगा इसी वास्ते कहते हैं 'यदि तु प्रतिपदोक्तो निपात०, यदि प्रतिपदोक्त उञ् निपात लिया जाय तो दोष नही है, फिर पद ग्रहण क्यों किया। उ० 'उत्तरार्थम्, उत्तर सूत्र में अनुवृत्ति के वास्ते है। उत्तर सूत्र कौन है जिसमें इसका फल हो उसे लिखते हैं। ङमो ह्रस्वा०, इस सूत्र में फल है। इसमें 'टि च०, से पद की अनुवृत्ति करके यह अर्थ करना। ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याजादेः पदस्य ङमुट्। यहां पर अजादेः पदस्य यह अर्थ पदे का अधिकार करके किया है। ऐसा अर्थ करने का फल परम दारडिनौ यहां पर औ पद न होने से ङमुट् नहीं हुआ यदि पदस्य का अधिकार नहीं करते तो ङमुट् हो जाता। इस वास्ते पद ग्रहण का फल उत्तरार्थ हुआ। शंका। वास्तविक में पद ग्रहण का उत्तर सूत्र में भी कुछ फल नहीं है क्योंकि 'ङमो ह्रस्वादचि, इस सूत्र में पदस्य का अधिकार है इस वास्ते यह अर्थ होता है ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मान्परस्याचो ङमुट्। यह अर्थ करने पर भी परम दारडिनौ में दोष नहीं है। क्योंकि यहां उत्तर पदत्वे चापदादि विधौ। पदादि विधि को छोड़ कर उत्तर पद को जहां पदत्व कार्य करना हो वहाँ प्रत्यय लक्षण नहीं होता है। अतः परम दारडिनौ में प्रत्यय लक्षण से दारडिन् को पदत्व नहीं होगा तो ङमन्त पद से परे अच् का अभाव हो गया इस वास्ते ङमुट् भी नहीं होगा फिर पदे का उत्तर सूत्रमें फल भी नहीं है। उ०। यहां 'उत्तर पदत्वे चा०,

यह निषेध नहीं लगता क्योंकि यह निषेध तो माषकुम्भवापेन इत्यादिकों में पदव्यवायेपि करके प्राप्त जो णत्व उसकी व्यावृत्ति के वास्ते है कि उत्तर पद को जहां कार्य हो वहां वहां प्रत्यय लक्षण नहीं हो। इस वास्ते पद ग्रहण उत्तरार्थ ही मानना योग्य है। परम दारडिनौ इत्यादिकों में डमुट् व्यावृत्ति के वास्ते है। शं०। पदे का फल तो हलि सर्वेषां यहां है इसका यह अर्थ होता है कि हलादौ पदे परे यकार वकारस्य लोपः तेन वृत्तवभ्याम् इत्यत्र वकारस्य नित्यं लोपो न भवेत् किन्तु 'लोपः शाकल्य०, विकल्पेन लोपो भवेदिति उ०। 'हलिसर्वे०, सूत्र में वकार की अनुवृत्ति ही नहीं है अतः 'लोपः शाकल्य०, से ही विकल्प करके लोप होता है। इस वास्ते पदे पहण की अनुवृत्तिका इस सूत्र में फल नहीं है किन्तु 'डमोह्स्वा०, इस सूत्र में फल है।

'हलि सर्वेषाम्, भो भगो अघो और अवर्ण यह हैं पूर्व में जिसके ऐसे लघु अलघूच्चारण यकार का लोप हो हल् परे रहते सब के मत में। इस सूत्र में वकार की अनुवृत्ति नहीं करना फल का अभाव होने से शं०। हलि सर्वेषाम्, इस सूत्र में हलि ग्रहण क्यों किया। उ० हलि ग्रहण नहीं करेंगे तो तो देव शब्द् से जस् विभक्ति की जकार की इत्सज्ञा हो गई देव अस् ऐसी स्थिति हुई। फिर 'प्रथमयोः पूर्व०, करके पूर्व सवर्ण दीर्घ हो गया है फिर 'ससजुषो०, करके रु हो गया उकार की इत्संज्ञा हो गई 'भो भगो०, करके यकारा देश हो गया देवाय् इह ऐसा बना अब यदि यहां पर हलि नहीं ग्रहण करेंगे तो यकार का लोप हो जायगा। श०। कहते हैं कि यदि अस् परे रहते भी सूत्र लग जायगा तो 'लोपः शाक०, सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा तो अच् परे रहते 'हलि

सर्वे०, को 'लोपः शाकः०, बांध लेवेगा तो देवायिह में दोष नहीं फिर हल् ग्रहण क्यों किया। कहते हैं नहीं जब देवाय् इह इस अवस्था में सूत्र लगा 'व्योर्लघु प्रय०, तो इस कर के यकार को लघूच्चारण यकार हो गया। अब यह लघूच्चारण यकार शाकल्य के मत में होता नहीं शाकटायन के मत में होता है तो 'लोपः शाकल्य०; तो लगेगा नहीं और 'हलि सर्वे०, लग जावेगा तो लघुच्चारण पक्ष में अच् परे रहते भी देवा इह ऐसा रूप हो जायगा इस वास्ते हलि ग्रहण किया जब हल् कहते हैं तब हल् परे नहीं है। अतः लोप नहीं हुआ एतदर्थ हल् ग्रहण है। वकार की अनुवृत्ति करनी चाहिये। उ० इस सूत्र में अशि की अनुवृत्ति करके यह अर्थ करलो अश् रूप हल् परे रहते। तब तो वृक्षव् करोति में प्राप्ति ही नहीं है। वृक्षव हसति इत्यादिकों का अनभिधान होने से यहां भी वकार की अनुवृत्ति का फल नहीं है। क्योंकि 'भो भगो अघो०, इन्हों से परे कहीं वकार मिलता नहीं है। शं०। अच्छा वृक्ष व् करोति यहां अकार वकार से मिलता है। अतः रोऽसुपि, यहां न सुपि असुपि यह नञ् पर्युदास नहीं मानना। यदि पर्युदास मान लेवेंगे तो सुप भिन्न सुप् सदृश प्रत्यय परे रहते सूत्र लगेगा अहर्पति इत्यादि में। और अहर्भाति में नहीं लगेगा इस वास्ते प्रसज्य मानना। अहन् शब्द के नकार को रेफ आदेश हो सुप परे रहते नहीं हो। शंका करते हैं कि 'रोऽसुपि, इस सूत्र में असुपि ग्रहण क्यों किया। यदि असुपि नहीं करेंगे तो सुप् परे रहते भी लग जायगा अहोभ्याम् इत्यादिकों में। अब तो 'अहन्, करके रुत्व होता है फिर अहन्, को बाध कर रेफ कर देगा। अतः असुपि

कहना चाहिये। शं० यदि यह सूत्र सुप् परे रहते भी लग जायगा तो अहन् सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा क्योंकि यह सुप परे रहते और असुप् परे रहते सवजगह लगजायगा इस वास्ते व्यर्थ होकर 'अहन्, सूत्र इसका बाधा करेगा कि सुप् परे रहते नहीं लगता है। इस वास्ते असुप् परे रहते ही लगेगा पुनः असुपि क्यों कहा। उ०। 'अहन्, सूत्र व्यर्थ नहीं है क्योंकि अहोभ्याम् में चरितार्थ है जब कि तुमने 'रो सुपि, को सुप् परे रहते भी लगा लिया तो अहन् भ्याम् इत्यादिकों में भी लग जायगा अर्थात् नकार को रेफादेश करेगा तो अहर्भ्याम् रूप बनेगा। अब यहां 'न लोपः प्रातिपदि०, की दृष्टि में 'रोऽसुपि, असिद्ध है तो अहः अहोभ्याम् दोनों जगह रेफ आदेश हो भी जायगा परन्तु रुत्व को असिद्ध होने से न लोप हो जायगा। इस वास्ते 'अहन्, सूत्र की आवृत्ति करके प्रथम सूत्र से न लोप का अभाव करेंगे और दूसरे से रुत्व करेंगे इस वास्ते 'अहन्' सूत्र करना आवश्यक है व्यर्थ नहीं है। इस वास्ते अहन् सूत्र व्यर्थ होकर 'रोऽसुपि' का बाधक होजायगा यह बात नहीं कह सकते तो अहोभ्याम् में दोष आवेगा इस वास्ते असुपि ग्रहण किया।

'रूपरात्रिरथ०,। रूप रात्रि रथन्तर परे रहते भी अहन् शब्द के नकार को रुत्व कहना। रोऽसुपि का बाधक है। अहो-रात्रि में रात्रि शब्द परे नहीं है इस वास्ते वार्तिक नहीं लगना चाहिये। इस वास्ते कहते हैं 'एकदेश०'। एक देश जिसका विकृत हो वह अन्यवत् नहीं होता है। यहां रात्रि के इकार का लोप होने पर भी रात्रि मान लिया गया इस वास्ते लग गया। 'अहरादीनामिति०' पत्यादि शब्द परे रहते अहरादि के रेफ को

रेफ कहना विकल्प करके। अर्थात् विसर्ग को बाध कर रेफ कर देता है। पक्ष में विसर्ग और उपध्मानीय हो जाते हैं।

'रो रि'। रेफ का लोप हो रेफ परे रहते।

'ढ्लोपे पूर्वस्य०'। ढ् में अकार उच्चारणार्थ है। ढ्श्च रश्च ढ्रौ तौ लोपयति इति ढ्लोपस्तस्मिन ढ्लोपे। ढरेफ का लोप कराने वाले ढ रेफ परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ हो। पुनर् रमते पुनारमते इत्यादि।शं०। इस सूत्रमें दीर्घ पद का उपादान किया है इस वास्ते 'अचश्च' सूत्र से अच् की उपस्थिति होगी तो ढ रेफ का लोप कराने वाले ढ रेफ परे रहते पूर्व अच् को दीर्घ हो ऐसा अर्थ करने पर भी पुनारमते इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो जायंगे पुनः अण् ग्रहण क्यों किया। उ०। अण् ग्रहण नहीं करेंगे तो और अच् की उपस्थिति करोगे तो तृहु वृहु हिंसायाम् धातु से क्त प्रत्यय किया ककार की इत्संज्ञा लोप तृहत् वृहत ऐसा हुआ फिर होढः से दोनों जगह ही हकार का ढकार हुआ और 'झष-स्तथोर्धोधः, से तकार का धकार किया 'ष्टुनाष्टुः, से ध का ढ और 'ढो ढे लोपः, से ढ का लोप किया। इट् होता नहीं है क्योंकि वह उदित है। अतः 'स्वरति सूति, से विकल्प करके इट् पाया था 'यस्य विभाषा, से निषेध हो गया तो तृढः वृढः ऐसे रुप बने। अब यहां पर अचों में ऋकार आ गया इसवास्ते दीर्घ हो जायगा तो तृढः वृढः ऐसे असंगत रूप हो जांयगे अतः सूत्र में अण् ग्रहण किया। जब अण् करते हैं तब प्राप्ति नहीं क्योंकि अण् पूर्व णकार तक लिया जाता है पूर्व णकार तक लेने में ऋकार नहीं आया है। अतः दीर्घ भी नहीं होता है। शं०। अच्छा हम पर

णकार तक अण् मान लेवे तब तो यहां दीर्घ होना चाहिये। उ० ।यदि पर णकार तक अण् लिया जाता तो सूत्रमें अण् ग्रहण ही क्यों करते क्योंकि पूर्व वत् अच् की उपस्थिति करके ही निर्वाह कर लेते पुनः अण् ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि पूर्व णकार तक अण् लेना पर णकार तक अण् नहीं लेना इस वास्ते दीर्घ नहीं हुआ तो वृढः वृढः बने। शं० ढ्रलोपे पूर्व० इस सूत्र में ढ्रलोपे इसको सप्तमी मान कर 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे०, इस परिभाषा की उपस्थिति होने से ढकार रेफ से अव्यवहित पूर्वत्व विशिष्ट अण् को दीर्घ हो यह पूर्वत्व विशिष्ट अर्थ स्वयमेव हो जायगा। फिर सूत्रमें पूर्व ग्रहण क्यों किया ।उ०। पूर्व ग्रहणमनुत्तरपदेपि पूर्वमात्रस्य दीर्घार्थम्। यद्यपि परिभाषा से ही पूर्व ग्रहण लब्ध हो जायगा परन्तु पूर्व ग्रहण इस वास्ते है अनुत्तर पदे-पि उत्तर पद परे नहीं है तब भी पूर्व मात्रस्य दीर्घार्थम् पूर्व मात्र को दीर्घ हो। यह भाव हुआ कि पूर्व ग्रहण नहीं करोगे तो इस सूत्र में 'अलुगुत्तरपदे, से उत्तर पदे का अधिकार होजायगा और उत्तर पद यह साकाँक्ष पद है इस वास्ते इस उत्तर पद से पूर्व पद का आक्षेप होगा तो सूत्र का यह अर्थ होगा कि ढकार रेफ का लोप कराने वाले उत्तर पद घटक ढकार रेफ परे रहते पूर्व पद घटक अण् को दीर्घ हो। अर्थात् पूर्व पद घटक अण् हो और उत्तर पद घटक ढ रेफ हो तब ही दीर्घ हो। यदि एक ही पद में अण् और ढ रेफ हों तो दीर्घ नहीं होगा पुनारमते, हरीरम्यः, शम्भू राजते इत्यादि में तो पूर्व पद घटक अण् है और उत्तर पद घटक रेफ है इस वास्ते दीर्घ हो गया। परन्तु अजर्घाः और अलीढः में दीर्घ नहीं होगा क्योंकि यहां एक पद घटक अण् और रेफ ढकार

है क्योंकि लिट् धातु से क्त प्रत्यय किया ककार की इत्संज्ञा और लोप लिह् त होढः से हक ढ 'झषस्तथो०, से तकार का धकार ष्टु नाष्टु से धकार का ढकार ढो ढे लोपः करके पूर्व ढकार का लोप लिढः अब यहाँ पर जब पूर्व ग्रहण है और पूर्व ग्रहण सामर्थ्य से उत्तर पदे का अधिकार नहीं है तब तो दीर्घ होता है लीढः ऐसा बनता है क्योंकि एक पद में अण् और ढ लोप हो तब भी दीर्घ होता है अब उत्तर पदे का अधिकार करने पर नहीं होगा क्योंकि दोपद जहां होंगे वहां दीर्घ होगा। एक पद में दीर्घ नहीं होगा इसी प्रकार अजर्घा यहां पर भी गृधु अभिकांक्षायाम् धातु से 'धातो रेकाचो, से यङ् प्रत्यय किया और यङोऽचि करके यङ् का लुक् गृध रहा तब सन्यङोः से गृ धृ को द्वित्व किया उरत् करके अभ्यास को अर् किया हलादिः शेषः करके र् और ध् का लोप कुहोश्चुः से झ किया और अभ्यासेचर्च से झका जकार किया और अभ्यास को रुक् आगम जर्गृध्-धातु संज्ञा, और लङ् लकार किया, अट् आगम, अजर्गृध् लङ्। लङ् स्थाने सिप् शप् प्रत्यय, और शप् का लुक्, पुगन्त लघूपधस्य च से गृ में अ को गुण किया, अजर्गर्धसि इतश्च करके इकार का लोप, और हल्ङ्याब्भ्यो से सिप् के सकार का लोप, अजर्गर्ध भष् भाव, अजर्घर्ध झलां जशो०, से अन्त्य धकार का दकार दश्च से दकार का रु किया उकार की इत्संज्ञा अजर्घरर् हुआ, अब यहां रो रि से पूर्व रकार का लोप, अजर्घर अब यहां ढ्रलोपे से दीर्घ होकर और रेफ का विसर्ग होकर अजर्घाः बनता है, यह भी नहीं बनेगा क्योंकि एक पद घटक अण् और रेफ हो गये, और चाहिये पृथक् २ अर्थात् पूर्व पद घटक अण् हो और उत्तर पद घटक रेफ

हो तब दीर्घ होगा इस वास्ते पूर्व ग्रहण किया है। जब पूर्व ग्रहण करते हैं तब पूर्व ग्रहण सामर्थ्य से उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है। श० । सूत्रारम्भ सामर्थ्य से ही उत्तर पद का अधिकार नहीं होगा क्योंकि पूर्व पद घटक कहीं अण् और उत्तर पद घटक ढ रेफ नहीं मिलगे। उ० । यह बात नहीं कह सकते हो क्योंकि सूत्र तो पुनरमते इत्यादि में चरितार्थ है। शं० । रेफ परे रहते तो सूत्र चरितार्थ है परन्तु ढकारांश में कहीं चरितार्थ नहीं है तो ढकारांश में व्यर्थ होकर नियम करेगा कि उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है। उ० । ढकारांश में भी सूत्रव्यर्थ नहीं है क्योंकि लिहः ढौकनम् यहां पर षष्ठी समास किया, और विभक्ति का लोप किया, लिह् ढौकनम् ऐसा बना। फिर होढः से हकार का ढकार किया ढो ढे लोपः से लोप लि ढौकनम् । अब यहां उत्तर पद परे रहते लकार वृत्ति इकार को दीर्घ होकर लीढौकनम् ऐसा रूप बनता है यहां ढकारांश में भी सूत्र चरितार्थ है फिर ढकारांश में सूत्र व्यर्थ होकर उत्तर पदे का अधिकार नहीं होगा पूर्व ग्रहण क्यों किया यह बात नहीं कह सकते हो। यदि उत्तर पद शब्द को समास के चरमाऽवयव में रूढ़ मानेंगे और उत्तरञ्च तत्पदं उत्तर पदम् ऐसा नहीं मानेंगे तब तो पुनारमते इत्यादिकों में भी समास नहीं है तब तो रकारांश में भी सूत्र व्यर्थ होकर नियम करेगा कि उत्तर पदे का अधिकार नहीं होता है फिर पूर्व ग्रहण क्यों किया। उ० । उत्तर पद शब्द को समा सके अन्ताऽवयव में रूढ माने तब भी रकारांश में सूत्र व्यर्थ नहीं है क्योंकि निर्-रक्तम् दुर रक्तम् यहां पर रो रि सूत्र से र का लोप होकर ढ्रलोपे से दीर्घ होकर नीरक्तम् दूरक्तम् ऐसे रूप बनते हैं यहां सूत्र चरि-

र्थ है व्यर्थ नहीं है इस वास्ते रकारांश में सूत्र व्यर्थ होकर यह नियम करे कि उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है यह बात नहीं कह सकते किन्तु पूर्व ग्रहण करना चाहिये। शं० ।ढकारांशमें सूत्र चरितार्थ नहीं हो सकता है क्योंकि लिढ् ढौकनम् ऐसीस्थिति में ढोढे लोपःकरके लोप पायः और जश्त्व प्राप्त रहा तब जश्त्व की दृष्टि में ढ लोप असिद्ध है। इस वास्ते जश्त्व होकर लिड् ढौकनम् ऐसा ही रूप बनता है तब तो ढकारांश में व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है। फिरपूर्व ग्रहण क्यों किया। उ० अत्रयः भृगव इत्यादिकों की सिद्धि के लिये उत्तर पद शब्द समास के अन्ताऽवयव में रूढ नहीं किन्तु उत्तर पदशब्द को वृत्ति चरमाऽवयवे रूढ ऐसा करना चाहिये। कृत्तद्धित समासैक सनाद्यन्ता रूपा पञ्च वृत्तयः इन पांचोंमें रहती है। इसवास्ते लीढः इत्यादि कृदन्त रूपावृत्ति होने से ढकारांश में भी सूत्र चरितार्थ है व्यर्थ नहीं है इस वास्ते ढकारांश में व्यर्थ होकर उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है यह बात नहीं कह सकते किन्तु उत्तर पद का अधिकार हो ही जाता है। इस वास्ते सूत्र में पूर्व ग्रहण किया है। शं० यदि कोई यह कहे कि 'ढ्लोपे की दृष्टि में ढ्लोप असिद्ध हैं इस वास्ते सूत्र व्यर्थ होजायगा उ० । सूत्रारम्भ सामर्थ्यात् यहां असिद्धत्व व्यवहार नहीं होता है। मनस् रथः यहां पर 'ससजुषो' से रु किया मनर् रथः तब रोरि से लोप और हशिच से उत्व प्राप्त रहा तो कौन हो इस वास्ते कहते हैं कि। 'विप्रतिषेधे०'। तुल्य बल विरोध को विप्रतिषेध कहते हैं। अर्थात् जहां समान बल वालों का विरोध हो वहां पर कार्य हो। समान बल वाले कैसे होते हैं 'अन्यत्रान्यत्रलब्धावकाशयोरेकत्र समावेश स्तुल्य बल

विरोधः' । अब यहां 'हशि च' देवो हसति में चरितार्थ है और रोरि पुना रमते में और यहां दोनों पाये तो परत्वात् रोरि करके लोप होना चाहिये इति लोपे प्राप्ते । तब पूर्वत्रा सिद्धम् करके 'रोरि' को असिद्ध होने से हशि च करके उत्व होगया और गुण होकर मनोरथः बन गया

'एतत्तदोरिति०' ककार रहित जो एतत् और तत् शब्द तत्सम्बन्धी सु का लोपहो हल् परे रहते नञ् समासको छोड़कर । शं० जब एतत् शब्द से अथवा तद् शब्द से अकच् प्रत्यय करेंगे तो शब्दान्तर हो जायगा एतत् तत् शब्द ही नहीं रहेगा तो सु का लोप भी नहीं होगा फिर 'अकोः किम् अको ग्रहण क्यों किया । उ० यही अको ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि यन्मध्ये पतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते इति, जो जिसके मध्य में पतित होता है उसका उसी से ग्रहण होता है । अतः जब अकच् प्रत्यय करके एष को बनावेंगे वहां भी लोप हो जायगा इस वास्ते अकोः ग्रहण किया । नञ् का अभाव अर्थ है उसमें प्रतियोगी सम्बन्ध से तद् शब्द को विशेषणता है इस वास्ते अभावस्थ के नञ् को प्रधानता है और उत्तर पदार्थ को अप्रधानता है इस वास्ते अनुपसर्जन होगया तो त्यदादीनामः लगेगा नहीं तो हलन्त तद् शब्द रहेगा । इस वास्ते 'हलङ्याब्भ्यो' से सु का लोप हो जायगा फिर अनञ् समासे ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं अनञ् समासे किम् । उ० । इसी नञ् ग्रहण सामर्थ्य से कल्पना करते हैं कि नञ् समास में उत्तर पदार्थ प्रधान रहता है इस वास्ते 'त्यदादीनामः, लग जायगा तो नसः असः शिवः ऐसा रूप बनेगा 'हलङ्यादि लोप नहीं होगा। अनञ् समासे नहीं करोगे तो असः शिवः में 'एतत्तदो०' से लोप

होजायगा इस वास्ते अनञ् ग्रहण किया है। हलि किम् । हलि क्यों कहा तो एषोऽत्र यहां भी सु का लोप हो जायगा इस वास्ते हलि कहा। जब हलि कहते हैं तब प्राप्ति नहीं है क्योंकि हल परे नहीं।

'सोचि लोपे०' स इसके सु का लोप हो जहां लोप होने पर पाद पूर्ण हो। यदि बिना लोप हुये ही पाद पूर्ण हो जाय तो भी लोप नहीं होगा। इह ऋ क् पाद इति। यहां ऋ चा का ही पाद लिया जाता है यह वामन कहता है। प्रमाण का अभाव होने से कहते हैं 'अविशेषादिति०' कोई विशेषता न होने से श्लोक पाद भी लिया जाता है जैसे सैषदाश० इत्यादि में लोप होगया। लोपे चेदिति किम्। लोप होने पर ही पाद पूर्ण हो ऐसा क्यों कहा। स इतश्चेति यहां भी लोप होकर सन्धि हो जाती इस वास्ते कहा यहां लोप के बिना ही पाद पूर्ण हैं। 'सत्येवेत्यव० यह निर्धारण कहां से आया इस वास्ते कहते हैं 'सत्येवेत्यवधारणन्तु०' यह अवधारण तो स्यश्छन्दसि बहुलम् इस सूत्र से इस में बहुल की अनुवृत्ति से लब्ध हुआ है क्योंकि बहून अर्थात् लाति ददाति इति बहुलम् इस व्युत्पत्ति से सत्येव लब्ध हो गया फल सोह माजन्म० इत्यादिकों में बिना ही लोप के पाद पूर्ण होजाता है इस वास्ते यहां लोप नहीं हुआ। सत्येव इस निर्धारण ने यह वार्त्ता सिद्ध की कि जहां लोप होने पर ही पाद पूर्ण हो वहां लोप करो अन्यथा नहीं करो यदि बिना ही लोप के पादपूर्ण हो अथवा लोप होने पर पादन्यून न हो वहां नहीं करो।

इति स्वादि सन्धि प्रकरणम् समाप्तम्

"अथ विसर्गसन्धि"

'विसर्जनीयस्यसः, ।। विसर्ग को सकार आदेश हो खर परे रहते। शं० । यह सूत्र पूर्व ही लिख दिया था फिर यहां क्यों लिखा। उ० । विसर्ग पद की अनुवृत्ति प्रदर्शनार्थ यहां लिखा है कि इस सूत्र से आगे के सूत्रों में विसर्ग की अनुवृत्ति होती है। 'शर् परे विसर्ज०. शर् परे यस्मादिति बहुव्रीहिः । शर् है परे जिससे ऐसा खर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग हो । विसर्ग तो था ही फिर विसर्ग क्यों किया । इस वास्ते व्यर्थ होकर नियम करता है कि, विसर्ग को विसर्ग ही हो न त्वन्यत् अन्य नहीं हो। सत्वादिकों का अपवाद है। यदि–'शर्परेन , शर् है परे जिससे ऐसा खर् परे रहते यत्प्राप्तं तन्नेति ऐसा कर देते तो प्रकरण गत जो सत्व है उसीका निषेध करता 'कुप्वोः, ◌ॅ क ◌ॅ पौच, का निषेध नहीं करता इस वास्ते वासः क्षौमम् अद्भिः स्नातम् इत्यादिकों में जिह्वामूलीय और उपध्मानीय हो जाते 'विसर्जनीय ग्रहण करने से विकार मात्र का बाधा किया इस वास्ते कहते हैं 'इह यथा यथं०, यहां यथा योग्य सत्व और जिह्वामूलीय इत्यादि नहीं हुये ।

'वा शरि, शर् परे रहते विसर्ग को विकल्प करके विसर्ग ही हो। 'खर परे श०, खर है परे जिससे ऐसा शर् परे रहवे विसर्ग का लोप हो विकल्प करके । पक्षे विसर्गस्य विसर्गः वा शरीत्यनेनेति भावः । द्वितीय पक्षे सत्वम् । दो विकल्प होने से तीन रूप बने । प्रकरण वश लिखते हैं कुप्वोः ◌ॅ क ◌ॅ पौच । 'को उपधादौ, । विसर्ग को सकार आदेश

हो अपदादि कवर्ग पवग परे रहते । शं० + सूत्र में तो अपदादौएक वचन है और वृत्ति में अपदाद्योः यह द्विवचन कैसे उ० । व्यत्ययो बहुलम् इससे एक वचन हो गया है । 'पाश कल्पक काम्येष्विति' पाश कल्पक काम्य यह प्रत्यय परे रहते सत्व कहना यह वृत्तिकार कहते हैं । परन्तु यथासम्भव यही उदाहरण मिलते हैं यदि अन्य भी मिले तो वहां भी कर लेना ।

'अनव्ययस्येति०' अव्यय भिन्न विसर्ग को सत्व कहना । प्रातः कल्पम् यहां नहीं हुआ । परन्तु यह वार्तिक व्याख्यान से अव्ययीभाव समास में नहीं लगता है । इस वास्ते उपयस्काम्यति यहां सत्व हो जायगा ।

'काम्येरोरेवेति, काम्यच् प्रत्यय परे रहते रु सम्बन्धि रेफ का जहाँ विसर्ग हो वहीं सत्व होता है । नेह—यहां नहीं हुआ, गीः काम्यति । यहां गीर शब्द का रेफ है । शं० । यहाँ 'इणः षः , से ष हो जायगा । उ० । उसका भी वह वार्तिक निषेध करता है ।

'इणः षः, । इण से परे विसर्ग को षकारादेश हो अपदादि कवर्ग पवर्ग परे रहते "सोऽपदादौ का अपवाद है" यहाँ से आगे अपदादि का सम्बन्ध नहीं करना व्याख्यान से ।

"नमस्पुरसोर्गत्योः" गति संज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्ग को सत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते । नमस्करोति । यहां 'साक्षात्प्रवृत्तित्वात् ,कृञ के योग में नमस् की विकल्प से गति संज्ञा है तदभावे, गति संज्ञा के अभाव में, नमः करोति बनता है । पुरोऽव्यम् इससे पुरस् की नित्य गति संज्ञा होती है । पुरस्करोति—यहां नित्य ही सत्व हो गया 'अगतित्वान्नेह, गति संज्ञा न होने से

कहते हैं। पुरः प्रवेष्टव्याः यहां सत्व नहीं होता है। पूः पुरौ पुरः प्रवेष्टव्याः इत्यादि इस वास्ते लिखे हैं कि यह शब्द है गति संज्ञक अव्यय नहीं है।

'इदुदुपधस्य चा०, इश्च उश्च इदुतौ–तौ उपधे यस्येति बहुव्रीहिः न प्रत्ययः अप्रत्ययः इकार उकार हैं उपधा में जिसके ऐसे प्रत्यय सम्बन्धी भिन्न विसर्ग को सत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते। श०। 'इदुदुपधस्य चा०, इस सूत्र में अप्रत्यय ग्रहण क्यों किया। इकार उकार है उपधा में जिसके ऐसे विसर्ग को सत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते ऐसा करने से आविष्कृतम् दुष्कृतम् इत्यादि सिद्ध हो जायेंगे। उ०। यदि अप्रत्यय ग्रहण नहीं करोगे तो अग्निसु करोति यहां उकार की इत्संज्ञा और लोप करके फिर 'ससजुषो, से रुत्व करके फिर उकार की इत्संज्ञा और लोप करके 'ख्र रवसानयोः" करके विसर्ग हो गया। अग्निः करोति इस अवस्था में "इदुपधस्य" करके सत्व हो जायगा, क्योंकि प्रत्ययावयव सम्बन्धी रेफ का विसर्ग है इस वास्ते प्रत्यय ग्रहण करना चाहिये। शं०। पुनरपि दोष नहीं है। क्योंकि अग्निः करोति में सु को रुत्वादि करके विसर्ग किया है सो यहां पर न तो विसर्ग ही हो सकता है और न ही षत्व हो सकता है क्योंकि प्रत्यय सु तब अग्नि सु इसकी पद सज्ञा थी और उसी समय प्रत्यय था अब तो प्रत्ययत्व धर्म रहा ही नहीं फिर प्रत्यय ग्रहण व्यर्थ ही है। उ०। स्थानिवद्भाव से प्रत्यय मान कर विसर्ग किया है इसी वास्ते प्रत्यय के अवयव विसर्ग है। तो प्रत्यय ग्रहण नहीं करोगे तो षत्व हो जायगा इस वास्ते अप्रत्यय ग्रहण किया। शं०। स्थानिवद्भाव तो हो ही नहीं सकता क्योंकि स्थानिवद्भाव की दृष्टि में विसर्ग विधायक असिद्ध है।' अतः प्रत्यय धर्म नहीं आ सा सक्ता

प्रत्यय ग्रहण नहीं करने पर भी षत्व होना चाहिये। उ०। अप्रत्यय ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि ' वति घटितादेशानां त्रिपाद्यामपि प्रवृत्तिः वति युक्त शब्दों की त्रिपादिकों में भी प्रवृत्ति होती है। इस वास्ते यहां स्थानिवद्भाव से प्रत्यय धर्म आ जायगा तो प्रत्यय भिन्न विसर्ग को षत्व हो प्रत्यय के विसर्ग को नहीं हो इस वास्ते प्रत्यय ग्रहण किया। एवं वायुः करोति यह भी जानना।

शं०। दा धातु से औणादिक डुर प्रत्यय किया दा डर डकार की इत्संज्ञा और लोप 'दा डर, 'डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टे र्लोपः, इससे दा में आकार का लोप किया। दुर् करोति रकारस्य विसर्गेदुः करोति। अब वहां अप्रत्यय ग्रहण चरितार्थ हो जायगा व्यर्थ नहीं होगा। फिर कैसे कहते हो कि अप्रत्यय ग्रहण व्यर्थ होकर 'वति घटित आदेशों की त्रिपादिकों में भी प्रवृत्ति होती है उ०। यदि प्रत्यय ग्रहण यहां चरितार्थ है तो "न पदान्त द्विर्वचन०,, इस सूत्र घटित द्विर्वचनादि व्यर्थ होकर उक्त वचन को ज्ञापन करते हैं इस वास्ते स्थानिवद्भाव होकर प्रत्यय आ जायगा और अप्रत्यय यह निषेध होने से अग्निः करोति में षत्व नहीं होगा। इस वास्ते अप्रत्यय ग्रहण है। शं०। मातृ शब्द से ङस् प्रत्यय, ङकारस्येत्संज्ञा और लोप मातृ अस्। 'ऋत उत्,इससे ऋकार अकार को उर आदेश हो गया। मातुरस् "रात्सस्य,, करके सकार का लोप रेफ का विसर्ग मातुः कृपा ऐसा प्रयोग बना अब यहां "इदुदुपधस्य० करके षत्व होना चाहिये। क्योंकि यह प्रत्यय भिन्न विसर्ग हैं। यदि स्थानिवद्भावेन प्रत्ययत्व लाया जाय तो वह नहीं आ सकता है क्योंकि यह उर प्रकृति प्रत्यय दोनों

से मिल कर बना है यदि "अन्तादिवच्च,, करके परादिवद्भाव से लावें तब भी नहीं आ सकता क्योंकि प्रत्यय ङस् अर्थात् का अस् था सकार का तो लोप हो गया केवल अकार शेष रहा था । इस वास्ते अकार अल्पात्र वृत्ति धर्म होने से प्रत्यय धर्म वाला नहीं होगा । उ० । एकादेश शास्त्र निमित्तकस्य न षत्वम् एकादेश शास्त्र है निमित्त जिसका ऐसे विसर्ग को षत्व नहीं होता है । एकादेश शास्त्र कौन 'ऋत उत्,, वह निमित्त है जिसका ऐसा जो रेफ स्थानिक विसर्ग है उसको षत्व नहीं होता है । इस वास्ते षत्व नहीं होता है । शं । मातुः कृपा यहां पर तो ऋतउत् करके जो उर् हुआ है तब तो एकादेश निमित्तक रेफ है विसर्ग तो है नहीं फिर "एकादेश शास्त्र निमित्तकस्य०" यह निषेध कैसे लगे उ० । 'एकादेश निमित्त निमित्तकस्य न षत्वम्, एकादेश जो निमित्त वह निमित्त जिसका ऐसे विसर्ग को सत्व नहीं होता है अर्थात् परम्परा से निमित्त है इस वास्ते निषेध हो गया । शं० । 'एकादेशशास्त्र निमि०, इसमें क्या प्रमाण । उ० । यह वचन है । शं० । वचन किसने ज्ञापन किया । उ० । कस्कादि गण में आचार्य ने भ्रातुष्पुत्रः शब्द को षत्वार्थ पाठ किया है वह पाठ क्यों किया क्योंकि 'इदुदुपधस्य, करके ही षत्व हो जायगा फिर कस्कादिगण में भ्रातुष्पुत्र का पाठ हुआ व्यर्थ वही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि "एकादेश शास्त्र निमित्तकस्येति,, यह वचन हुआ, फल मातुः कृपा यहां षत्वाभाव रूप है । और स्वांशे चरितार्थ है कि भ्रातुष्पुत्रः शब्द में षत्व हो । शं० । मातुः कृपा में तो दोष नहीं है क्योंकि

यहाँ "षत्व तुको
शास्त्र असिद्ध होता
"ऋत उत,, असि
विसर्ग नहीं दीखेग
करने में क्या प्रमा
दि में षत्वार्थ है
ोऽसिद्धो भवति
एकादेश शास्त्र अ
है और न पदादि
"कोऽसिचत्" य
मुहुस् शब्द के वि
तरस्याम्,, तिरस्
परे रहते विकल्प

"द्विस्त्रिश्चतु
कृत्वोर्थ में वर्त्तमा
को षत्व हो विक
त्रिष्करोति चतुष्
अर्थ हैं । शं० ।
वास्ते इन दोनों
लिया जायगा
कृत्वोर्थ ग्रहण
चरितयो र्मध्ये
इस वास्ते यहां
नहीं है जैसे च

वहाँ "षत्व तुको रसिद्ध ,, षत्व और तुक् करने पर एकादेश शास्त्र असिद्ध होता है यहां प्रकरण में षत्व करना है इस वास्ते "ऋत उत्,, असिद्ध हो जायगा। तो उकार उपधा में और विसर्ग नहीं दीखेगा फिर "एकादेश शास्त्र ,, यह वचन ज्ञापन करने में क्या प्रमाण क्योंकि भ्रातुष्पुत्रः शब्द का तो पाठ कस्कादि में षत्वार्थ है व्यर्थ है नहीं। उ०। "पदान्त पदाद्योरेवैकादेशोऽसिद्धो भवति नान्यत्र,, पदान्त और पदादि कार्य करने पर ही एकादेश शास्त्र असिद्ध होता है अन्यत्र नहीं। यहां न तो पदान्त है और न पदादि है इस वास्ते निषेध नहीं हुआ। यह वार्तिक "कोऽसिचत्" यहां लङ् में चरितार्थ है। "मुहुसः प्रतिषेधः" मुहुस् शब्द के विसर्ग को षत्व का प्रतिषेध कहना "तिरसोन्यतरस्याम्,, तिरस् शब्द सम्बन्धि विसर्ग को सत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते विकल्प करके। ≍ कु ≍ पो रित्यस्यापवादः।

"द्वित्रिश्चतुरितिः,, तद्धित में कृत्वसुच् प्रत्यय होता है। कृत्वोर्थ में वर्त्तमान जो द्विस् त्रिस् चतुर् शब्द तत्सम्बधि विसर्ग को षत्व हो विकल्प करके कवर्ग पवर्ग परे रहते। द्विष्करोति, त्रिष्करोति चतुष्करोति। दो वार तीन वार चार वार यह क्रम से अर्थ हैं। शं०। सूत्र में द्विस् त्रिस् शब्द सुच् प्रत्यायान्त हैं इस वास्ते इन दोनों के साहचर्य से चतुर शब्द भी सुच प्रत्ययान्त ही लिया जायगा फिर सूत्र में कृत्वोर्थ ग्रहण क्यों किया। उ०। कृत्वोर्थ ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'सहचरिता सहचरितयो र्मध्ये सहचरितस्यैव ग्रहणं" यह परिभाषा अनित्य है। इस वास्ते यहां नहीं लगेगी तो जहां चतुर शब्द सुच प्रत्ययान्त नहीं है जैसे चतुष्कपालः इत्यादि प्रयोगों में भी "द्वित्रिश्चतुः,,

इस करके विकल्प से षत्व होकर दो रूप बन जायंगे इस वास्ते कृत्यार्थ ग्रहण करना किजिससे चतुर् शब्द भी सुच् प्रत्ययान्त ही लिया जावे जिसमें सुच् प्रत्यय नहीं हुआ है वहां सूत्र नहीं लगे। अनित्य का फल "दीधी वेवीटाम्,, इस सूत्र में दीधीवेवी के साहचर्य से इट् धातु का ग्रहण नहीं हुआ। किन्तु अलग इट् आगम लिया गया। अब यहां चतुष्कपालः में अव्युत्पत्ति पक्ष का आश्रय लेकर "इदुपधस्य०,, करके नित्य षत्व हो गया है यह प्रत्युदाहरण वाला चतुर शब्द सुच् प्रत्ययान्त नहीं है। जहां सुच् प्रत्ययान्त है वहां दो रूप बनते हैं।

"इसुसोः सामर्थ्ये,,। सामर्थ्य अर्थ में वर्त्तमान जो इसन्त उसन्त पद तद् अवयव जो विसर्ग उनको षत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते विकल्प करके। शं०। सामर्थ्य दो प्रकार की होती है एकार्थी भाव रूपा और व्यपेक्षा रूपा तो इस सूत्र में सामर्थ्य पदसे क्या लेते हो। उ०-'सामर्थ्यमिहेति०, यहां सामर्थ्य व्यपेक्षा रूपा लेते हैं एकार्थी भाव रूपा नहीं यदि एकार्थीभाव रूपा सामर्थ्य लेली जाती तो सर्पिष्करोति में यह सूत्र नहीं लगता क्योंकि यहां एकार्थी भाव नहीं है। इस वास्ते इदुदुपधस्य करके नित्य सत्व हो जाता। और परम सर्पिः कुण्डिका में एकार्थी भाव-रूप सामर्थ्य होने से "इसुसोः,, सूत्र से विकल्प करके सत्व हो जाता यह दो दोष हो जाते। इस वास्ते सामर्थ्य पद से व्यपेक्षा रूपा सामर्थ्य लेना। शं०इस सूत्र में व्यपेक्षा रूप सामर्थ्य लिया जाता है इसमें क्या प्रमाण है। उ० "नित्यंसमासे,, इस सूत्रमें समास ग्रहण सामर्थ्यसे हम इसुसोःसामर्थ्येमें सामर्थ्य पदसे

व्यपेक्षा लेते
भाव का ग्रहण
सामर्थ्य को अ
वही उत्तरसूत्र
है इस सूत्र में
शं०-परम सर्पि
इस सूत्र से नि
पदस्थस्य का अ
कर देगा। इस
हैं। उ०—पृथ
सा व्यपेक्षा
बोध जनकत्वम
ग्रहण क्यों कि
त्वमुदकम् यह
'तिष्ठतु सर्पि
एकार्थी भाव
में है और उ
भाव का तो

'नित्यं
त्तर पदस्थ
रहते। शं०
यहां भी षत्व
प्राप्ति नहीं क
शं०-सर्पिष्कु

व्यपेक्षा लेते हैं। यदि सामर्थ्य पद से व्यपेक्षा नहीं लेते एकार्थी भाव का ग्रहण कर लेते तो इसके आगे के सूत्र में इसी सूत्र से सामर्थ्य की अनुवृत्ति ले जाते फिर समास ग्रहण क्यों किया वही उत्तरसूत्र घटक समास ग्रहण व्यर्थ हो कर नियम करता है इस सूत्र में सामर्थ्य से व्यपेक्षा लेना आगे के सूत्र में नहीं। शं०—परम सर्पिः कुण्डिका यहां तो दोष नहीं 'नित्यं सम से इस सूत्र से नित्य षत्व हो जाता। उ०—इस सूत्र में अनुत्तर पदस्थस्य का अधिकार है। इस वास्ते अनुत्तर पदस्थस्य निषेध कर देगा। इस वास्ते षत्व नहीं होता है। शं०-व्यपेक्षा किसे कहते हैं। उ०—पृथगर्थानां पदानामाकांक्षादि वशाद्यः परस्परसम्बन्धः सा व्यपेक्षा शं०—एकार्थीभाव क्या है। उ—एकार्थोपस्थिति बोध जनकत्वम एकार्थीभावत्वम्। शं०—इस सूत्र में सामर्थ्य ग्रहण क्यों किया—उ० सामर्थ्य नहीं कहते तो तिष्ठतु सर्पिः पिब त्वमुदकम् यहां भी हो जाता इस वास्ते कहा। भाव यह है कि, 'तिष्ठतु सर्पिः पिब त्वमुदकम् यहां न तो व्यपेक्षा है और न एकार्थी भाव है असम्बन्ध वाक्य है। सर्पिः का अन्वय तिष्ठतु में है और उदक का पिब में। इस वास्ते व्यपेक्षाभी नहीं एकार्थी भाव का तो कहना ही क्या है वह तो हो ही नहीं सकता है।

'नित्यं समासे०, इसन्त उसन्त जो पद तदवयव जो अनुत्तर पदस्थ विसर्ग उन्हों को नित्व षत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते। शं०—अनुत्तरपदस्थस्येति किम् उ०—परम सर्पिः कुण्डिका यहां भी षत्व हो जायगा इस वास्ते किया। जब करते हैं तब प्राप्ति नहीं क्योंकि परम शब्द के उत्तर पद में स्थित विसर्ग है शं०—सर्पिष्कुण्डिका यहां पर 'नित्यं समासे०, इसी से षत्व हो

जायगा फिर कस्कादिगण में सर्पिष्कुण्डिका शब्द क्यों पढ़ा । उ०-'कस्कादिषु सर्पिष्कुण्डिका शब्दो ऽ समासे०, कस्कादिकों में जो सर्पिष्कुण्डिका शब्द का पाठ किया है वह इस वास्ते है कि जहां समास नहीं है जैसे सर्पिः कुण्डिका यहां षत्व होकर सर्पिष्कुण्डिका बना यहां पर भी कस्कादित्वात् षत्व होगया एक तो यह प्रयोजन है । दूसरा जहां व्यपेक्षा नहीं हो जैसे आनय सर्पिः कुण्डिका तिष्ठति यहां कस्कादित्वात् नित्व षत्व हो, और व्यपेक्षा में नित्य हो जैसे इदं सर्पिः कुण्डिकायाः यहां इसुसोः से विकल्प होजाता इस वास्ते यहां पाठ किया है। भाव यह हुआ कि कस्कादि गण में जो सर्पिष्कुण्डिका शब्द पढ़ा है उसके तीन प्रयोजन हैं। प्रथम तो यह है कि जहाँ समास नहीं है वैसे ही वाक्य रख लिया है वहाँ पर भी होजाय । क्योंकि नित्यं समासे यह समास में लगता है जहां समास नहीं वहां व्यपेक्षा रहेगी तो 'इसुसोः, से हो जायगा। इस वास्ते कहते हैं 'व्यपेक्षा विरहेपि, जहां व्यपेक्षा भी न हो वहां पर षत्व करने के वास्ते है यह दूसरा प्रयोजन है, और व्यपेक्षा में 'इसुसोः, करके विकल्प प्राप्त रहेगा वहां नित्य हो यह तीसरा प्रयोजन है। कोई यह कहता है कि कस्कादि में इस वास्ते पढ़ा है कि जहां उत्तर पद में स्थित है वहां भी षत्व हो इस वास्ते किया है जैसे परम सर्पिष्कुण्डिका यहां पर भी हो जाय, क्योंकि 'नित्यं समासे, यहसूत्रअनुत्तर पदमें स्थित विसर्ग को षत्व करता है यहां उत्तर पद में स्थित है इस वास्ते कस्कादि में पाठ किया है ॥ यह ठीक नहीं है क्योंकि उत्तर पद मे 'कस्कादि त्वात् हो जाय तो 'नित्यं समासे, में अनुत्तरपद-स्थस्येत्येव यह जो कहा है व्यर्थ हो जाय इस वास्ते उत्तर पदमें जहां

स्थित होगा वहां अनुत्तर पद ग्रहण सामर्थ्य से कस्कादित्वात् भी षत्व नहीं हो सकता है इस वास्ते कस्कादि में करने का फल नहीं है। 'अतः कृकमि० , । अकार से उत्तर अव्यय भिन्न विसर्ग को समास में नित्य सकारा देश हो करोत्यादि परे रहते उत्तर पदस्थ विसर्ग को नहीं हो। अतः किम्, अत नहीं कहते तो, गीः कारः यहां ईकार से परे भी विसर्ग को सत्व होजाता। अनव्ययस्य किम् अव्यय भिन्न नहीं कहते तो स्वः कामः यहां : स्व अव्यय के विसर्ग को भी सत्व होजाता इस वास्ते किया। समासे किम्। समास नहीं कहते तो बिना समासमें भी लग जातायशः करोति यहांपर समास नहीं है अनुत्तरपदस्थस्य किम्। अनुत्तरपदस्थस्य नहीं करते तो परम यशः कार यहां उत्तर पदमें भी सत्व होजाता। इस वास्ते किया है। 'अधः शिरसी पदे इति।, अधस् और शिरस् शब्द सम्बन्धी विसर्ग को सकारादेश हो पद शब्द परे रहते। अधस्पदम् शिरस्पदम् मयूर व्यंसकादित्वात् समासः, शिरस्पदमत्यत्र षष्ठी समासः। अनुत्तरपदस्थस्य किम्। परम शिरः पदम्। यहां उत्तर पद में भी लग जाता इस वास्ते किया।

'अतः कृकमि, इस सूत्र में अत् के साथ तपर करण होने से इस अकार से परे लगेगा दीर्घ से परे नहीं लगेगा। इस वास्ते कहते हैं कस्कादिषु च भास्करः यहां कस्कादित्वात् सत्व होगया।

'इति विसर्ग सन्धिः,

❀ इति सन्धि प्रकरणम् समाप्त ❀

॥इति शम्॥

—०:०—०:०—

भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा

यह आश्रम रेवाड़ी जंकशन से पश्चिम दिशा में लगभग एक कोस के अन्तर पर जंगल में अति पवित्र भूमि में बना है। जल की सुविधा के लिये तीन कूप और एक तालाब है। तालाब में कुछ पक्के घाट बनाये हैं। १०० बीघा भूमि में उपयोगी वृक्ष लगा कर उपवन बनाया गया है। आश्रम से लगी हुई ५०० बीघा भूमि गौओं के चरने के लिये श्री० लेफ्टीनेन्ट रायबहादुर राव बलवीरसिंह जी ने आश्रम को प्रदान की है, जिसमें गौ, मृग आदि स्वच्छन्द विचरते हैं।

इस आश्रम में एक ब्रह्मचर्याश्रम, साधारण पाठशाला, कन्यापाठशाला व अछूत पाठशाला और अतिथियों व सत्संगियों के ठहरने का स्थान व पुस्तकालय है।

ब्रह्मचर्याश्रम।

इस समय आश्रम में २५ ब्रह्मचारी हैं। यह प्राचीन ऋषियों की भांति गुरुजनों की सेवा व स्वावलम्बन का जीवन व्यतीत करते हुए विद्योपार्जन करते हैं इनका भोजन व रहन सहन इतना सादा है कि एक ब्रह्मचारी का समस्त खर्च ५) मासिक है। स्वावलम्बी इतने हैं कि इन्होंने ६५ फीट गहरा कूप स्वयं ही खोद लिया है। संस्कृत, देवनागरी, इतिहास, अंग्रेजी इत्यादि

सब प्रकार की शिक्षा दी जाती है। व्याख्यान देना भी सिखाया जाता है।

कन्यापाठशाला—इनका जीवन भी बहुत सादा व तप का बनाया जाता है। संस्कृत, देवनागरी, गणित की शिक्षा इनको दी जाती है। रामायण व गीता इनके मुख्य ग्रन्थ हैं।

अछूत पाठशाला व साधारण पाठशाला में निकटवर्ती ग्रामों के बालक पढ़ने आते हैं। अछूतों को आश्रम में रखने का विचार हो रहा है। पुस्तकालय आरम्भिक अवस्था में है। धार्मिक ग्रन्थों का साधारण संग्रह हुआ है, हां एकान्त शांत स्थान के कारण यह छोटा पुस्तकालय भी बड़ा उपयोगी है।

रामपुरा आश्रम की भांति दादरी, गढ़ीबोलनी, जोड़िया, खेटावास, निखरी, नूरगढ़, खोयरी, पालम, भटिन्डा, आदि अन्य स्थानों भी इसी प्रकार के आश्रम खोले गये हैं। इन आश्रमों के द्वारा विना मूल्यशिक्षा, सुख, शान्ति, प्रेम, निष्काम सेवा व भगवान् की भक्ति का प्रचार करना एक मात्र उद्देश्य है।

उद्देश्य ।

१—श्री भगवान् की भक्ति का प्रचार करना ।

२—गौरक्षण और उसके लिये गोचर भूमि छुड़वाना ।

३—जंगलों में वृक्ष लगवाना और बीच में जलाशय बनवाना।

४—शिक्षा का प्रचार करना (जिसमें मनुष्यमात्र विद्यालाभ कर सकें) और प्राचीन प्रथा को फिर प्रचलित करना ।

५—बीमारियों के अवसर पर दवाई बांटना ।

६—आस पास के ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति और प्रेम बढ़ाना ।

७—सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना ।

८—राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना ।

यह आश्रम नियमानुसार एक कमेटी की संरक्षता में है ।

नोट—आश्रम से "ज्ञानयोग भक्तिमार्ग" नाम का मासिक पत्र हिन्दी भाषा में प्रकाशित करने का विचार है यदि भक्तजन यत्न करके ५०० ग्राहकों के नाम भेज दें तो पत्र शीघ्र जारी कर दिया जावे ।

पुस्तक मिलने का पता: —

श्री भगवद्भक्ति आश्रम,

रामपुरा, पो० रेवाड़ी,

जि० गुड़गावां।

प्रिंटर:—**रविवर्मा, सोलंकी,**

आर्य्यभास्कर प्रेस, आगरा।